प्रकाशक का विज्ञापन ।

'प्रताप-पुस्तक-माला' की यह ११ वीं पुस्तक हम पाठकों के हाथ में रख रहे हैं। पुस्तक कैसी है यह बात आप 'परिचय' पढ़ कर ही जान सकते हैं । यह जिस प्रथितनामा वङ्गीय महाकवि के महाकाव्यों के आधार पर लिखी गई है उसका नाम ही इसकी उत्तमता के लिए अलं है। यदि इसे पढ़ कर आप कुछ भी शान्ति प्राप्त कर सके तो हम अपने प्रकाशन को सफल समझें गे।

इस पुस्तक का प्रथम संस्करण लेख ने अपनी मनोरंजक हिन्दी ग्रंथ प्रसारक मंडली से स्वयं किया था, किन्तु कुछ कारणों से उन्होंने अब मंडली का कार्य्य शिथिल कर दिया है, और आगे से इस पुस्तक के प्रकाशन का सारा स्वत्व मुझे प्रदान कर दिया है। इस पुस्तक का प्रथम संस्करण छपने के कुछ ही दिनों के अन्दर समाप्त हो गया था। हमारी परम इच्छा थी कि ऐसी सुन्दर पुस्तक से हिन्दी पाठक अधिक दिनों तक वंचित न रहें। ठाकुर साहब की कृपा से हम अपनी इच्छापर्ति में सफल हो सके; इसके लिए हम उनके कृतज्ञ हैं।

प्रताप कार्य्यालय,
कानपुर।
वसंतपंचमी १९७१ वि० } शिवनारायण मिश्र वैद्य

इस पुस्तक को

अपनी परमपूज्य माता

सौभाग्यवती श्रीमती कौमुदी

के चरणों में सादर समर्पित

करता हूं।

परिचय

समाज की नीति विषयक कल्पना में, जड़ सृष्टि संम्बन्धी ज्ञान में, रीति भाँति और परिस्थिति में जैसा अन्तर पड़ता जाता है वैसा वैसा ही धर्म के स्वरूप में—वाह्यभेष में—अंतर पड़ता जाता है। धर्म पुस्तकें चाहे जितनी पुरानी हों परन्तु लोग उनको और ही दृष्टि से पढ़ने और विचारने लगते और उनसे समयानुकूल मतलब निकालते हैं। पैग़म्बर प्रेषित अथवा अवतारी पुरुष कोई हो उनके कर्मों को लोग अलग अलग दृष्टि से देखते हैं। दिनों दिन ज्ञान की वृद्धि होकर आचार विचार में जैसा जैसा अन्तर पड़ता जाता है वैसा वैसा ही धर्म में भी परिवर्तन होता जाता है। यदि इस बात को माना जाय अथवा इस बात के रोकने का प्रबन्ध किया जाय तो समाज की उन्नति ठीक ठीक नहीं होती। यही नहीं वरन् युवा पुरुषों की भाँति भाँति की प्रवृत्ति अश्रद्धा की ओर अधिक हो कर वास्तविकता की ओर झुक जाती है। इसका उदाहरण तलाश करने के लिए दूर जाना न होगा। अंगरेज़ी राज्य की स्थापना होने के बाद बहुत ही जल्द अंगरेज़ी शिक्षा का प्रचार देश में आरम्भ हुआ। अंगरेज़ी शिक्षा फैलने से भारत वर्ष में बहुत जल्द सामाजिक, धार्मिक परिवर्त्तन होना शुरू हो गया। पाश्चिमात्य ज्ञान और विज्ञान से परिचित विद्वान् लोग हर एक वस्तु को विचार शक्ति की कसौटी पर चढ़ा कर परखने लगे। कौन वस्तु ग्राह्य है और कौन अग्राह्य, इसके लिए वे प्रत्यक्ष प्रमाण ढूंढ़ने लगे। सृष्टि ज्ञान, रीति-रवाज़ और आचार विचार में कितने ही पुराने विचार, निश्चित मत और प्रचलित रुढ़ी इत्यादि नवीन विचार शक्ति

की कसौटी पर ठीक न जँचने से त्याज्य समझे जाने लगे। और इसी के साथ प्राचीन धर्म के सम्बन्ध में भी उनको अश्रद्धा उत्पन्न होने लगी। अंगरेज़ी भाषा का प्रचार बंगाल प्रान्त में अधिक होने के कारण वहां पर यह परिवर्तन सब से पहले आरम्भ हुआ। राजा राममोहन राय ने सब से पहले धर्म-संशोधन का कार्य हाथ में लिया और नवशिक्षित लोगों का भ्रम दूर करने के लिए उपनिषदों का अनुवाद करना आरम्भ किया। राजा राममोहन राय उदात्त विचार और उदार बुद्धि के पुरुष थे। उनका मत पुराने ख़याल के लोगों को मान्य न हुआ। परन्तु तो भी वे उनको पूज्य मानते हैं। महर्षि देवेन्द्र नाथ टागोर भी सात्त्विक वृत्ति के पुरुष थे उन्होंने भी कुछ दिनों तक राजा राममोहन-राय के मतों पर ही काम चलाया, परन्तु, बीच में बाबू केशव चन्द्र सेन ने राजा राममोहन राय के विचारों को बिलकुल उलट पुलट ही दिया। उनका विचार अंगरेज़ी विद्या की ओर अधिक था। क्राइस्ट का चरित और उनकी शिक्षाओं को पढ़ने से उनके हृदय पर उनकी बातों का बहुत ही कुछ दृढ़ संस्कार पड़ गया था अतएव हिन्दू समाज से उनका बहुत ही अधिक अन्तर पड़ गया। हिन्दू समाज पर नवीन विचार वालों ने फिर आघात करना शुरू किया। परन्तु यह हालत बहुत दिनों तक न रही। धीरे धीरे इसकी स्थिति बदलने लगी। जो लोग पहले हिन्दू समाज की जड़ काटने पर उद्यत थे वे ही लोग उसकी जड़ सींचने लगे। ऐसा होने से हिन्दू धर्म को पुनः बल प्राप्त हुआ। बंगाल के प्रसिद्ध गद्य लेखक बाबू बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय और प्रस्तुत कवि बाबू नवीनचन्द्र सेन इसके अध्वर्यु हुए। इन्होंने अपनी अप्रतिम बुद्धि द्वारा आज कल की हालत को देख कर हिन्दू धर्म का उज्वल स्वरूप लोगों के

सामने उपस्थित किया; जिसके द्वारा पुनः लोगों को हिन्दू धर्म में पूर्ववत् श्रद्धा उत्पन्न हुई। कलकत्ता रिव्यू में लिखा है कि Babu Nobin Chunder Sen is undoubtedly the poet of the Hindu Revival, अर्थात्, बाबू नवीनचन्द्र सेन हिन्दू पुनरुज्जीवन काल के मुख्य कवि हैं इसमें संशय नहीं है। इन्हीं बाबू नवीनचन्द्र सेन ने बंगभाषा में तीन बहुत ही प्रभावोत्पादक कवितायें लिखी हैं जिनके नाम रैवतक, कुरुक्षेत्र, और प्रभास हैं। कुरुक्षेत्र काव्य बंगाली लोगों का राष्ट्रीय-काव्य करके प्रसिद्ध है। इन तीन काव्यों में से रैवतक काव्य के सातवें और बारहवें सर्ग के आधार से इस पुस्तक के पूर्व स्मृति और सोऽहम् यह दो अध्याय और नारी धर्म, सुख तत्त्व, सम्मेलन और महाभारत ये कुरुक्षेत्र काव्य के तीसरे बारहवें, तेरहवें और सत्तरहवें सर्ग के आधार से, और छाया, अभिशाप, महाप्रस्थान, प्रायश्चित्त और भविष्यत् प्रभास काव्य के पहले, दूसरे, आठवें, दसवें और तेरहवें सर्ग के आधार से श्रीयुत महाशय विनायक लक्ष्मण परलकर बी० ए०, एल, एल, बी०, ने मराठी में लिखे। यह पुस्तक 'मासिक मनोरंजन' नाम के मासिक पुस्तक में क्रमशः छपी है। उसी के आधार से मैंने इसको हिन्दी भाषा-भाषी लोगों के लिए लिखा है। अगर इसे पढ़कर लोगों की भक्ति और श्रद्धा श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द कन्द की ओर बढ़ेगी तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा।

ग्वालियर
१-१-०७

सूर्यकुमार वर्मा,

श्रीकृष्ण चरित

पहला अध्याय

पूर्वस्मृति

अर्जुन ने पूछा,—"कृष्ण! आप के चरित का वर्णन, लोग नाना प्रकार से, करते हैं; अतएव मैं आप का चरित, आप के ही मुँह से, सुनना चाहता हूं। आप मेरी यह इच्छा—यह मनोरथ—कृपा कर पूरा कीजिए। आप, अपनी बाललीला, यौवन की बीरता, अपने विशेष गुण इत्यादि सब, अपना अद्भुत वृत्तान्त अपने आप कहिए। अब आप अपनी अद्भुत कथा—विचित्र लीला—का वर्णन, शीघ्र आरम्भ कीजिए। मैं आप की लीला, आपके मुँह से सुनने का अभिलाषी हूं"।

कृष्ण ने मुसकरा कर कहा, "अद्भुत कथा! पार्थ! ठीक है; मेरा चरित बड़ा ही अद्भुत है। शत्रु और मित्र, हमारे चरित

का वर्णन, अपने अनुकूल कर के उसे और भी अद्भुत कर देते हैं; और अंध-विश्वासी लोगों ने, हमारा चरित और भी अधिक आश्चर्यजनक-कौतूहलपूर्ण-कर दिया है । परन्तु अर्जुन ! इस अथाह विश्व में, ऐसी कौन सी वस्तु है, जो अद्भुत नहीं है ? असंख्य पर-माणुओं में से यदि, एक परमाणु लेकर देखा जाय, अथवा अनन्त समुद्र में से, एक जल-बिन्दु लेकर उस पर विचार किया जाय; तो क्या उसका जीवन अद्भुत-आश्चर्यमय-दिखाई न पड़ेगा ? ज्ञानातीत और विस्मय-मय जगत् का वह भी एक अंश है। इस महासृष्टि में वह भी एक गूढ़ और अचिंत्य कार्य साधन करने के लिए उत्पन्न हुआ है । जिस वस्तु का प्रयोजन नहीं-उपयोग नहीं-ऐसी एक भी वस्तु इस संसार में निर्माण नहीं की गई । जिस वस्तु को तुच्छ समझते हो उसी के द्वारा बहुत बड़ा कार्य साधन होता है । जिस मनुष्य को तुम बेकार, किसी मतलब का नहीं विचारते, उसी के हाथों से, बाज़ वक्त ऐसा अगम्य अचिंत्य कार्य पूर्ण होता है कि देखने वाले, सुनने वाले और विचा-रने वाले सभी चकित हो जाते हैं। तुम जो कुछ कार्य करते हो, उसका परिणाम चिरकाल तक बना रहता है । भूत काल पर तुमने विजय पाई है और भविष्य काल पर तुम आक्रमण करना चाहते हो; परन्तु सूक्ष्म विचार से देखो तो तुम्हें यह बात मालूम हो जायगी कि, हमारा भविष्य काल का जीवन भूत काल का प्रतिबिम्ब मात्र है । अतएव अपने भूत काल के जीवन का स्मरण करके, उसका प्रतिबिम्ब देख कर, तदनुसार अपने जीवन की नौका चलाना चाहिए । पार्थ ! मैं आज तुम से अपना सच्चा सच्चा हाल-इतिहास-कहता हूं; जिसको जान कर, शत्रु की कीहुई व्यर्थ निन्दा और मित्र द्वारा वर्णन

किया गया मेरा विचित्र चरित्र दोनों ही सत्य के निर्मल प्रकाश के सामने नाश को प्राप्त हो जाँयगे।

" मेरे जीवन का आरम्भ यमुना नदी के किनारे वृन्दावन में हुआ। मेरे पिता नन्द, माता यशोदा और भाई बलराम; ये ही तीनों मेरे जीवन-नाटक के पहले अङ्क के पात्र थे। बालकपन में मैंने सुना था कि कई तरह के भय से दुःखित होकर, गोकुल नगर से गोप लोग भाग कर, वृन्दावन में आ बसे। गोवर्धन पर्वत के पास, यमुना नदी के किनारे, वृक्ष-लताओं से शोभित वृन्दावन में मेरी शैशवावस्था कटी।

"बालकपन की लीलाओं में से जो मुझे याद हैं, उनमें सबसे पहली यह है:—प्रातःकाल होते ही माता ने मुझे जगाया, मेरा मुँह धोया, मेरे बालों को अच्छी तरह सँवार कर बाँध दिया, मुझे कपड़े पहनाये, खाने को दिया और मेरा चुम्बन लेकर कहा—'भइया, गायें लेकर उन्हें वन में से चरा लाओ'। मेरे साथी, खेलने वाले लड़कों ने, आकर मेरे घर के द्वार पर आवाज़ दी। गायें रँभाती हुई बाहर निकलीं और मैं भी अपने साथियों—गोपों—को साथ लेकर गायें चराने के लिए बाहर निकला। गायें आगे आगे जा रही थीं, उनके बछड़े उनके साथ पीछे पीछे थे। हम दोनों भाई गोपों को साथ लिए वंसी बजाते, नाचते कूदते, हँसते खेलते वन की ओर जा रहे थे।

" नील वर्ण आकाश में, प्रातःकाल सूर्य उदय होने पर, यमुना जी के काले जल में, एक प्रकार का अपूर्व तेज दिखाई पड़ता था। यमुना जी का पवित्र और ठण्ढा जल, लहरें मारता बह रहा था। सुगंधित फूलों की महक से, सारा जंगल सुवासित हो रहा था। गोवर्धन पर्वत पर बाल-सूर्य

की कोमल किरणें बहुत ही शोभायमान दिखाई पड़ती थीं। प्रकृति की इस अपूर्व शोभा को निरख कर हृदय को बड़ा ही आनन्द मिलता था। उस वन में हम सब बाँसुरी बजाते, गाते और खेलते कूदते थे। गोवर्धन पर्वत भी हम लोगों के गाने और हँसने का अनुकरण करता था। कभी कभी हम लोग पेड़ की एक डाली से दूसरी डाली पर कूद जाते, कभी कभी लताओं के फूल के समान उलटे सीधे कलाबाज़ियाँ खाते। कभी कभी वन से फलों को तोड़ लाते और सब लोग इकट्ठे होकर, बैठ कर खाते और यमुना जी का ठण्ढा पानी पीते। दोपहर होने पर धूप अधिक तेज़ होने से, घने वृक्षों की शीतल छाया में जाकर बैठते। कभी कभी किसी विशाल वृक्ष के ऊपर चढ़ कर अति विस्तृत वृन्दावन की ओर देखते तो वह एक छोटा सा उपवन दिखलाई पड़ता।

"फिर सायंकाल होने पर गंभीर शृङ्गनाद और बंसी की झनकार से सारा वन गूँज उठता। गोप लोग गायों को बड़ी ज़ोर से हाँक मार कर बुलाते। गोपों की अवाज़ सुन कर, गायें मुँह की घास को मुँह में ही दबाये, तुरन्त वहाँ से चल देतीं; और गोपों के पास आकर, उनका मुँह ताकने लगतीं। अर्जुन! यह उनकी निःशब्द कृतज्ञता, कितनी मनोहर दिखलाई पड़ती है? इसके पश्चात् साँझ होते ही, हम सब लोग गायों को साथ लेकर, धूल उड़ाते, अपने अपने घर पर आ जाते।

"मेरे घर आने पर मेरी माता यशोदा घर से बाहर आ जातीं और प्रेमपूर्वक मेरी पीठ पर हाथ फेरतीं और पूँछतीं, 'भइया! सारे दिन वन में रह कर तू ने अपना दिन कैसे बिताया? मैं अभागिन, तुम्हारी राह की ओर आँखें लगाए,

अपना समय काटती रही'। माता यशोदा प्रेमपूर्वक मेरा चुम्बन लेतीं और मैं उन्हें भक्ति-पूर्वक चुम्बन देता। इस के बाद मेरे लिए जो कुछ वह खाने के लिए रख छोड़तीं, मैं उसे आनन्द पूर्वक खाता और नाना प्रकार की कथा वार्ता उनके मुँह से सुनता सुनता उन्हीं की गोद में सो जाता।

"जब मैं दस वर्ष का था, तब एक दिन दोपहर को, हम दोनों भाई, यमुनाजी के कनारे, एक वृक्ष की साया के नीचे, बैठे हुए, आकाश के समान शान्त, नील वर्ण यमुना जल में जो सूर्य की किरणें पड़ कर देखने वालों के मन में आनन्द और कौतूहल उपजाती थीं—उनका आनन्द लेने में मैं तल्लीन हो रहा था; इतने में यदुकुल के पुरोहित, गर्गमुनि वहां आए। सफ़ेद दाढ़ी, सिर पर जटा, प्रसन्न वदन, शरद ऋतु के पूर्ण-चन्द्र समान उनका उज्ज्वल मुख, कान्तियुक्त था। उन्हों ने मेरी ओर देख कर कहा, 'वत्स! तेरे ग्रह ऐसे पड़े हैं कि तेरे हाथ से बड़े बड़े विलक्षण काम होने चाहिए। आर्यावर्त रूपी विशाल पर्वत के अति उच्च शिखर से, कीर्ति रूपी दो नदियां निकलेंगी। वे दोनों नदियां अनेक विघ्न रूपी पहाड़ों को फोड़ती हुई, शान्त रूपी मैदान में बहती हुई, गंगा-यमुना संगम के समान, एक स्थान पर जाकर मिल जायँगी। यह सम्मेलन मनुष्य जाति के लिए एक महा तीर्थ होगा। और इन्हीं दोनों नदियों का प्रवाह, अप्रतिहत वेग से बह कर सिंधु-समागम द्वारा पृथ्वी का भार दूर करेगा। और फिर यही समुद्र-जल भविष्य काल में व्याप्त होकर सहस्र मुखों से पतित-पावन सुधा की वर्षा करेगा। जिसके कारण सारी पृथ्वी, तेरी धेनु चराने का क्षेत्र होगी। सारे मनुष्य तेरे गोपाल होंगे। वे इस संसारारण्य में विचरते हुए तेरे पद

चिह्न देखेंगे और वंशी की मधुर ध्वनि को सुनेंगे। विश्व का नाश करने वाले काल के प्रवाह में नर-नारायण की मूर्ति हिमालय के समान अचल रहेगी। ग्रहों के फल का अनुमान कभी असत्य नहीं निकलता। तेरे हाथ से महत्-कार्य ज़रूर ही होंगे। आज मैं इस शुभ मुहूर्त पर तुम दोनों को दीक्षा देता हूं। तुम गोपों के बालक; तुम्हें अध्ययन करने का अधिकार नहीं। तो भी मैं निडर होकर तुम्हें शस्त्र-विद्या और शास्त्र दोनों का ही ज्ञान कराता हूं'।

"अर्जुन! मुझे अब तक इस अधेड़ अवस्था में भी, उनके कथन का रहस्य, समझ में नहीं आया। भला, बालकपन में मैं उनकी बात क्या समझता? मैंने यमुना के पवित्र जल में स्नान किया और ऋषि को प्रणाम करके उनके समीप जा बैठा। इसके पश्चात्, मैं अश्रुपूर्ण नेत्रों से, आकाश की ओर देखने लगा। इतने में ऋषि ने पवित्र जल द्वारा हमारे ऊपर मार्जन करके एक एक का संस्कार किया। उस समय मुझे क्या मालूम हुआ कि, मेरा पुनर्जन्म हुआ—मैंने नया जन्म पाया, महर्षि के आश्रम के पास मैं रोज़ गायें चराने जाता और वहीं मैं उनसे, विद्या सीखता। परन्तु यह बात किसी को मालूम न हुई। महर्षि की दी हुई विद्या के ही प्रभाव से, मैंने बकासुर, पूतना, प्रलम्ब इत्यादि, महापराक्रमी हिंसक जीवों का, नाश किया। नागजातीय महाबली अनार्य—तस्कर कालीय—जिसके डर से, जङ्गलों में, गायें चराने और यमुना जी से पानी लाने को गोप लोग नहीं जाते थे-उसको भी मैंने जीत लिया। एक दिन मैं गायें चराते चराते घने जङ्गल के बीच दूर तक पहुँच गया। यकायक आकाश मेघाच्छादित हो आया। चारों ओर अंधकार ही अंधकार दिखाई पड़ने

लगा। बहुत ही जल्द पानी बरसने लगा। गायें वृक्ष के नीचे छाये का आसरा ले, जाकर खड़ी हो गईं। हम लोग भी कोई पर्वत की गुफ़ा में, कोई वृक्ष की खोह में और कोई घने वृक्ष के साये में ही खड़े होकर अपना अपना बचाव—पानी से—करने लगे। मेघ गरजने लगा। बिजली चमकने लगी। और मूसलाधार पानी पड़ने लगा। जङ्गल में उस समय चारों ओर पानी ही पानी दिखाई पड़ता था। नदी नाले ज़ोर से बहने लगे। उस समय वहां पर, एक ही वस्तु, आनन्द देने वाली थी। उस घने जङ्गल में, जितने सुगन्धित वृक्ष थे, वे जल के स्पर्श से—मानो स्नान करके—अपनी शीतल और मन्द मन्द सुगंधि हम लोगों तक पहुंचाते थे। जिसके कारण, हम लोगों का हृदय प्रफुल्लित हो जाता था। गोपाल लोग एक दूसरे से बैठे हुए पावस-वर्णन इस प्रकार कर रहे थेः—एक ने कहाः—'इन्द्र के हाथी चरने के लिए, आकाश में निकले हैं; वे ही गरज रहे हैं। और अपनी सूँड द्वारा, पानी बरसाते हैं। महावत लोग, सोने के अंकुश से उन्हें मारते हैं; उसी समय बिजली चमकती है'। दूसरे ने कहाः—'गोपाल! देख, इस पहाड़ी के बीच में, एक इन्द्र का हाथी, बैठा हुआ है'।

"पानी बन्द हुआ। आकाश निर्मल हो गया। सजल और श्यामल अरण्य की शोभा, नेत्रों को आनन्द देने लगी। गोपाल मेरे पास आ आ कहने लगेः—'हम लोग तो भूख से व्याकुल हैं। मारे भूख के मरे जाते हैं। अब हम क्या खाँय? कैसे जियें?' मैंने आस पास, अपनी निगाह डाल कर देखा; तो मुझे पास ही ऋषि का आश्रम दिखाई पड़ा। मैंने कहाः—'तुम लोग वहां—ऋषि के आश्रम पर—जाकर भिक्षा माँगो'। मेरे कहने पर गोपाल, उस आश्रम पर भीख माँगने गए।

परन्तु आश्रम-वासी ब्राह्मण ने, अपने यज्ञ के अन्न में से, उन को कुछ न दिया। क्योंकि गोप लोग नीच जाति के थे। गोप लोग थक कर—अपमान से दुःखित होकर—लौटे आए। जब मेरे भाई बलराम ने यह हाल सुना कि, ब्राह्मण ने नीच जाति के बालक समझ, यज्ञ अन्न नहीं दिया; तब उन्होंने क्रोधित होकर कहा—'चलो, हम लोग चलकर आश्रम को लूट लें'। मैंने ऐसा करने से उन्हें मना किया और कहा कि:—'अब की बार तुम ऋषिपत्नी के पास जाकर भिक्षा मांगो'। संसार में स्त्रियों का हृदय बड़ा ही कोमल होता है। वे अवश्य दुःख निवारण करती हैं, । ऋतिपत्नी ने जाति पांति का कुछ भी विचार न करके उन सबों की क्षुधा को शान्त किया। केवल दो ने ऋषि का अन्न ग्रहण नहीं किया। वह और कोई नहीं, मैं और मेरे भाई बलराम थे।

"एक ओर एक वृक्ष की छाया के नीचे, एक पत्थर की चट्टान पर पड़ा हुआ मैं आकाश की ओर देखता हुआ सोच रहा था, कि मनुष्य मात्र एक, उनके शरीर, रक्त, मांस, इंद्रिय सब सामान्य, जन्म मरण सब को एक समान, परन्तु गोप हीन जाति के, ब्राह्मण श्रेष्ठ जाति के; इसका क्या मतलब? चार वर्ण, चार वेद, तेतीस देवता, जीव का संहार करने के लिए निर्दयी यम, जन्म, मरण, धर्म अधर्म इत्यादि का विचार करते करते, मुझे नींद आ गई। सोते सोते मैंने स्वप्न देखा कि, धीरे दिग्मंडल अनेक चन्द्रमाओं के प्रकाश से प्रकाशित हो गया। मैंने शीतल परन्तु तेजोमय समुद्र में एक हज़ार पँखुरी का कमल देखा। उसकी नाभि के स्थान पर वसुंधरा थी। पँखुरियों के स्थान पर, असंख्य सूर्य-मंडल थे। मेरी आंखें चौंधिया गईं। उस कमल में स्थापित—विराजमान—मैंने एक

बहुत बड़ी विशाल-मूर्ति देखी। वह चतुर्भुज थी। उसके हाथ में गदा, पद्म, चक्र और शंख था। वह नील-मणि-मूर्ति तेजोमय पीताम्बर पहिने थी। सूर्य से निकलने वाली किरणों से जिस प्रकार स्फटिकप्रकाश निकलता है, उसी प्रकार उस विराट-मूर्ति से एक अनन्त व अचिंत्य शक्ति निःसृत होकर उसकी लहरें—किरणें—चारों ओर को पड़ती थीं। इन लहरों का—इन किरणों का—जितनी वे दूर होती जातीं थीं रूपान्तर होता जाता था। इतने में एक आवाज़ हुई—'प्रकृति और पुरुष का महा सम्मेलन देखो; येही नित्य, पूर्ण और सनातन हैं। शक्तिरूपी और सर्वभूतमय जो नारायण उनकी पद्मिनी यह प्रकृति है। दोनों ही अनन्त, नित्य और अव्यय हैं। जन्म और मरण केवल रूपान्तर मात्र हैं। ज्ञान स्वरूप-पांचजन्य शंख से नीति चक्र स्वरूप सुदर्शन का बोध होता है। नीति का उल्लंघन करने से भयंकर गदा द्वारा उस पाप का शासन होता है। पुण्य और नीति का पालन पोषण सुखमय पद्म द्वारा होता है। सारी मानव जाति एक ही जाति है। अनन्त विश्व ही वेदज्ञान है। उसके अध्ययन करने, उस ज्ञान के पाने का अधिकार मनुष्य मात्र के हृदय को है। अपने धर्म का पालन करना ही महायज्ञ है। श्रद्धाहीन मनुष्य, पवित्र गंगा जी के प्रवाह के समान बहने वाली, तेरे कर्तव्य की नदी, किस ओर को बह रही है; यह बात, ज्ञान के प्रकाश द्वारा, जान कर कर्म-क्षेत्र में अग्रसर हो'!

"धीरे धीरे कमल की पँखुड़ियां संकुचित हो गईं। उसकी नली पृथ्वी में लवलीन हो गई। नील शरीर अनन्त नील आकाश में विलीन हो गया। मेरी आंखें खुल गईं। जिस प्रकार बालक जागने पर, अपनी माता का मुख देखने लगते

हैं और देख कर प्रसन्न होते हैं; इसी प्रकार मैं भी वन-सृष्टि का मुख देखने लगा। उस समय वन में मुझे सब चीजें एक नए तर्ज़ की दिखाई पड़ीं! शोभा, प्रकाश, कोमलता, शान्ति और पवित्रता से सृष्टि ओतप्रोत हो रही है। ऐसा मुझे भासित हुआ। मुझ बालक का हृदय और प्राण प्रकृति में मिल गया। सारा संसार मेरा शरीर है और सारे प्राणी मेरा हृदय प्राणस्वरूप हैं; ऐसा मुझे प्रतीत हुआ। आनन्द और उत्साह से मेरे शरीर और मन में एक नवीन प्रकार के बल का संचार हो आया। मैं बहुत देर तक आकाश की ओर खड़ा देखता रहा। मेरी आँखों से आंसू बह रहे थे। इतने में मुझे किसी ने आवाज़ दी—मुझे पुकारा। मैंने पीछे मुँह फेर कर देखा तो मैंने एक असुर को अपने पास खड़ा पाया। उसे देख कर मैंने अपना धनुष बाण सँभाला। असुर ने हँस कर कहाः—'वीरेन्द्र! धनुप बाण नीचे रक्खो। मैं तुम्हारा शत्रु नहीं हूं। यदि मैं तुम्हारा शत्रु होता, तो तुम अब तक जीते न रहते। मेरी इच्छा तुम्हारे साथ मित्रता करने की है, युद्ध करने की नहीं। कृष्ण! क्या तुमने दुष्ट कंस के चरित को नहीं सुना'? "मैंने कहा :—'हां, मैंने सुना है'।

असुर ने कहा;—"तो फिर चल कर उसको मारना चाहिए, उसकी रक्तपिपासा—रक्ततृष्णा का बिलकुल नाश ही कर देना अच्छा है।" मैंने कहा; 'यह कैसे होगा? कंस मथुरा का राजा और मैं एक गोप का बालक! कंस के सा-मने मैं एक मशक-समान हूँ'।

असुर ने कहाः—"कृष्ण! इस वन में जो तुमने पराक्रम और साहस का काम दिखलाया है वह मशक के समान पुरुष से कभी नहीं हो सकता।"

परन्तु, इस काम में मुझे कोई सहायता देने वाला नहीं ?"

"मैं तुम्हारी सहायता करूंगा, असंख्य गोप तुम्हारी सहाय्य करेंगे। मथुरा वासी प्रजा तुम्हें देख कर तुम्हारी मदद् करेगी।"

"मैंने सुना है कि कंस की मृत्यु, देवकी के आठवें पुत्र से होगी; दूसरा कोई उसे नहीं मार सकता।" असुर ने कहाः—"वह देवकी का आठवां पुत्र कहां है ?"

"मैंने ऐसा सुना है कि, नागवंशीय राजा वासुकी ने उसे कहां छिपा रक्खा है।"

"कृष्ण! तुम्हीं तो देवकी के आठवें पुत्र हो।"

"उग्रसेन, वसुदेव और देवकी के क़ैद होने से मैं बहुत दुःखित था। मानवहृदय का धर्म बुद्धि के लिए अगम्य है। मैंने मथुरा उद्धार का संकल्प किया। मेरा कर्तव्य कर्म क्या है, यह बात मेरे हृदय-पट पर अंकित हो गई। मैंने अपने कर्तव्य को जान, उसके अनुसार कर्म करना आरम्भ किया। इन्द्र कौन है ? मेघ, वर्षा इत्यादि की विवेचना करके मैंने उसके सत्यज्ञान फैलाने का उद्योग किया। सृष्टि-क्रम के अनुसार पानी बरसता है। सूर्य, चन्द्र और तारे जिस नियम पर चलाये गए हैं उसी नियमानुसार भ्रमण करते हैं। सृष्टि को—प्रकृति को—उसी के गुण धर्म और नियमानुसार चलाने वाले इस अखिल विश्व के मालिक एक मात्र विष्णु भगवान् हैं। उन्हीं विश्वरूप नारायण की आराधना करनी चाहिए।

"भाद्रपद मास में, गोवर्धन पर्वत के शिखर पर, स्वप्न में पहले पहल जो मूर्ति देखी थी उसकी मैंने अपने हृदय में

स्थापना की। गोपों के निर्मल हृदय में भी मैंने उस महा-मूर्ति का बीजारोपण उपदेश द्वारा किया। मेरे इस कृत्य को जान इन्द्र के उपासकों ने आकर गोवर्धन पर्वत को चारों ओर से घेर लिया। मूसलाधार वर्षा होने लगी। परन्तु नारायण की कृपा, बलराम और गोपों की सहायता से, मैंने सात दिन तक, इन्द्र के मूढ़ उपासकों से, बाहुबल द्वारा, गोवर्धन की रक्षा की। शत्रु पराजित हुए और वायु वेग से मेघमाला छिन्न भिन्न हो गई। इस प्रकार मैंने सनातन वैष्णव धर्म पर्वत के शिखर पर खड़ी की। पताका के ऊपर शुभ्र सुदर्शन चक्र का चिह्न अंकित किया। क्या इस पवित्र पताका की शीतल छाया सारे भारतवर्ष पर पड़ कर उसका उद्धार कर सकेगी? उसी दिन से मैं गोप और गोपिकाओं को भक्तिरस के समुद्र में लहरें मारते हुए देखने लगा।

"पावस की बिदाई और शरद ऋतु का आगमन हुआ। इस ऋतु में यमुना के किनारे वृन्दावन में पूर्णिमा के दिन एक अपूर्व शोभा दिखाई पड़ती है। ऐसे समय पर मैं वहां गोपिकाओं के साथ रासलीला करता; फल फूल द्वारा नारायण की पूजा करता। नर, नारी और बालक मिल कर भक्ति रस में मग्न होकर, आनन्द पूर्वक मेरे साथ हरिनाम कीर्तन करते। बहुत से लोग प्रेम-रस तल्लीन हो, मूर्छित हो जाते। वृद्ध, प्रौढ़ और तरुण एक दूसरे का हाथ पकड़, भक्तिरस में मदमाते हो, मेरे चारों ओर नाचने लगते, मैं भी तल्लीन होकर बाँसुरी बजाता बजाता उन्हीं के साथ नाचने लगता।

"यकबारगी निर्मल आकाश में शंखनाद हुआ। चन्द्रमा ने अपना मुँह छिपा लिया। मैं निद्रा के वशीभूत होकर सो

गया। जब मैं सोकर जगा तब क्या देखता हूं कि गोपांगना, यशोदा विरह-दुःख से व्याकुल मुझे ढूंढ़ती फिरती हैं। मैं उठा और दौड़कर उन के पास गया। मुझे पाकर वे बड़ी प्रसन्न हुईं। कितनों के ही हृदय में मातृप्रेम का प्रादुर्भाव हुआ और उन्होंने पुत्रस्नेह का ध्यान कर मेरा चुम्बन लिया। किसी ने सखा भाव से मुझे अपने हृदय में स्थान दिया। और किसी ने प्रेमाशय से मेरा आलिंगन किया। सबों ने क्षण भर के लिए, पति, पुत्र, पिता, माता इत्यादिकों को विस्मरण कर दिया। उनकी वह परम भक्ति—उनका वह निःसीम प्रेम—वह भी किसके ऊपर? एक अल्पवयस्क—किशोर बालक के प्रति! अर्जुन! क्या तुम इन सब बातों से यह निश्चय नहीं कर सकते कि नारी का हृदय ही प्रेम के लिए एक मात्र स्थल है?

"आगे वसन्तऋतु का प्रादुर्भाव हुआ। पक्षी नाना प्रकार के सुर अलापने लगे। वृक्षों में फूल कलियां भी अपनी निराली शोभा दर्शाने लगीं। मन्द मन्द वायु बहने लगी। वसन्त पंचमी के शुभ दिन मैंने फिर नारायण की विधिवत् पूजा की और वसन्तोत्सव मनाया। किशोर—किशोरी—युवक—युवती—अपने अपने वय के उचित रंग विरंगे वस्त्र धारण करके, आनन्दोत्सव-वसन्तोत्सव-में आ शामिल हुईं उनके आने से वन की शोभा दूनी हो गई। प्रफुल्लित वदन, काले काले बाल, उन्नत वक्षःस्थल, कुंकुम से रँगे हुए स्वर्ण नाल के समान जिनके बाहु, विशाल नेत्र ऐसी युवतियां और सूर्य के समान तेजस्वी जिनका वदन, विशाल छाती, लम्बी लम्बी बाहें, ऐसी अपूर्व शोभा दर्शाने वाले पुरुष, वहां एकत्रित हुए। सारांश यह, कि एक ओर कोमलता, दया और प्रेम और

दूसरी ओर कठोरता, साहस और वीरता दृगोचर होतीथी।

"यमुना जी के किनारे, मधुर संगीत-ध्वनि सुनाईपड़ती थी। कोई नाचता, कोई गाता, कोई वृक्ष के नीचे हिंडोला डाले झूल रहा था। उस समय वहाँ पर यह प्रतीत होता था कि वसन्त के प्रभाव से कुसुम के सजीव गुच्छ झूला झूल रहे हैं। उस उत्सव को देखने के लिए, हज़ारों नाग गोपों की सूरत बना कर वहां आए; और उत्सव देखने में मग्न होगए। इस समय को मैंने अनुकूल समझ मथुरा की ओर पयान किया। मथुरा पहुँच कर मैंने द्वंद्वयुद्ध में कंस का बध किया और बिना प्रयास सरलतापूर्वक मथुरा पर विजय पाई।

"अर्जुन! तुमने यह सारी कथा-मेरी राम कहानी-सुनी। इस के पश्चात् मैं वसुदेव और देवकी को छुड़ाने के लिए कारागृह में गया। वहां पर जो शोकजनक दृश्य मैंने देखा उसका वर्णन मुझ से नहीं हो सकना। मेरे माता पिता का शरीर-बालकों के मृत्युशोक और अनेक प्रकार के अन्य कष्टों से जो उन्हें दुष्ट कंस ने पहुँचाये-सूखकर पिंजर होगया था। जिस समय जाकर मैंने उन्हें देखा उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी। वसुदेव ने मुझसे कहा— 'वीरेन्द्र! तुम इस समय अपने माता पिता के सामने खड़े हो'। यह सुन, मैं मूर्छित होकर उनके पैरों पर गिर पड़ा।

"अर्जुन! तुमने सुना होगा कि, जामाता के बध के लिए क्रोधित होकर, मगधेश्वर ने सत्रह बार व्रज पर चढ़ाई की; परन्तु सत्रहों वार उसकी हार हुई। परन्तु इस लड़ाई में मेरे सोलह हज़ार शूर वीर मारे गए। उनकी अनाथ विधवाओं के शोक और रोदन से मथुरा नगरी दहल गई और नाग-राज सेनासहित मुझे छोड़ भाग गया। मैंने विचारा

कि इस रक्त-प्रवाह में मेरा जीवनवृत खंडित हो जायगा; अतएव मैंने लड़ाई झगड़ा मिटाने और रक्तपात बन्द करने के लिए, उग्रसेन को मथुरा की गद्दी पर बिठाया और मैं उन सोलह हज़ार अनाथ विधवाओं को वज्र का हृदय कर वृज में ही छोड़, दुःखित हो, वहां से चला आया और यहां आकर द्वारिका नगरी को बसाया। अब यहाँ से मेरे अद्भुत चरित का दूसरा अङ्क आरम्भ होता है"।

दूसरा अध्याय

सोऽहम्

एक दिन सन्ध्या समय श्रीव्यास और अर्जुन श्रीकृष्ण जी से मिलने आए। कृष्ण ने बड़े नम्र भाव से, उठ कर व्यास को प्रणाम किया। और दोनों को अपने समीप आसन पर बैठा कर, यों कहने लगेः—"महर्षि के यहाँ पधारने पर, आज यह पृथ्वी पवित्र हुई और मैं कृत्यकृत्य हुआ। अभी थोड़ा ही समय हुआ कि मुझे आपका स्मरण आया था। मैंने यह भी निश्चय किया था कि, आपके आश्रम पर चल कर देश-दशा पर, कुछ विचार करें। और भारतवर्ष पर, जो चारों ओर से संकट आया हुआ है; उस संकट-निवारणार्थ आप से निवेदन करूँ और इस बाबत आपकी क्या राय है यह भी जानूँ और अब आगे क्या करना चाहिए इस विषय में भी आप से परामर्श लूँ।"

व्यास ने बड़े गम्भीर परन्तु मधुर स्वर से कहाः—"ऐसा कौन सा संकट देश पर आया हुआ है? किस विपत्ति ने इस पवित्र भारतवर्ष को आ घेरा हे जिसके निवाणार्थ

स्वयं श्रीकृष्ण को व्यास से राय लेने की ज़रूरत पड़ी? महासागर को क्या एक छोटे से तालाब के पास सलाह लेने के लिए जाने की ज़रूरत है? बहेलिया को देख कर यदि हिरण भय के कारण घबरा जाय तो क्या सिंह को भी उसे देखकर घबरा जाना चाहिए?"

श्रीकृष्ण ने कहा:—"भारत रूपी आकाश में, धीरे धीरे मेघों का संचार होने लगा है। वे मेघ कहाँ पर एकत्रित होंगे अथवा गर्जना कर के क्या अनर्थ पैदा करेंगे? यह नहीं कहा जा सकता। जरासन्ध, शिशुपाल, जयद्रथ इत्यादि अनेक राजा युद्ध की तैयारियां कर रहे हैं; वे द्वारकापुरी को समुद्र में डुबा कर, भारतवर्ष में चारों ओर, अपना फ़ौज भेजकर, उपद्रव मचावेंगे। भारत केन्द्र नष्ट होगा और सब राजा अपनी कक्षा से नष्ट हुए ग्रहों के समान, एक के ऊपर एक चढ़ाई करके, देश का बड़ा ही अहित करेंगे। इनके द्वारा जो देश में अनर्थ होगा वह कहते नहीं बनता। साधु लोगों की दुर्दशा होकर, दुष्टों का प्राबल्य होगा; जिससे धर्म का नाश हो जायगा। यह सब संकट, पाषाण मूर्ति के समान, निश्चिन्त होकर,—बैठे रहकर—क्या मैं देखा करूँ"?

व्यास ने कहा:—"यह एक ओर की कथा का वर्णन हुआ। दूसरे ओर का चित्र इससे भी भयंकर है। घबराए हुए हिरण के समान गृह-वासी ब्राह्मण और वन-वासी ऋषि मुनि, तुम्हारी ओर कान लगाए बैठे हैं। राज्य, समाज और धर्म इन तीनों में तुम एक सरीखी गड़बड़ मचाना चाहते हो, वे लोग यह समझ कर, तुमसे भय-भीत हो रहे हैं। उनके कथनानुसार सारे अनर्थों का मूल तुम्ही हो"।

कृष्ण ने हँसकर कहाः—"सारे अनर्थों का मूल मैं ? वैदिक धर्म में सृष्टि की सरल और सुन्दर पूजा का वर्णन किया गया है। बालकपन के सरस हृदय का साहजिक प्रवाह बन्द होकर, उसकी जगह पैशाचिक यज्ञ की जिस ने स्थापना की, वह इस अनर्थ का कारण, क्या मैं ? पवित्र उत्तर कुरु से वेद मंत्र उच्चारित करते हुए जब हमारे पूर्वज यहां आए, उस समय क्या चार जातियां थीं ? उस समय किसी ने शस्त्र ग्रहण किया, किसी ने शास्त्र अध्ययन किया और किसी ने व्यापार आरम्भ किया; अतएव कोई तो राष्ट्र का हाथ हुए, कोई पग और कोई मस्तक। क्या उस समय जाति भेद था ? जिसने सामाजिक शरीर के टुकड़े करके उसके चार भाग किये, क्या वह इस अनर्थ का कारण नहीं ? जो व्यास को ब्राह्मण कहना पसन्द नहीं करते, कर्ण सरीखे वीर को क्षत्रिय कबूल नहीं करते, क्षत्रियों को विद्या नहीं सिखाते, वैश्यों को बाहुबल सम्पादन नहीं करने देते और इस देश के मूल निवासियों को शूद्र करके जिन्होंने उनको दास बनाया हैं; क्या वे इन सब अनर्थों का मूल नहीं हैं" ?

व्यास ने कहाः—"कृष्ण ! ठीक है; परन्तु काल के अनन्त पट से क्या तुम दो युगों को पोंछ डालना अथवा धो डालना चाहते हो ? आर्य लोगों को फिर उत्तरकुरु की ओर भेज देने की क्या तुम में सामर्थ्य है ? प्रगति के प्रवाह को लौटा कर, क्या तुम पुनः उसे उसकी असली जगह पर ले जाना चाहते हो ? वेदों के प्राचीन धर्म और समाज का प्रचार क्या फिर करना चाहते हो" ? कृष्ण ने कहाः—"मेरी यह इच्छा नहीं। प्रगति के प्रवाह को लौटाना यह बात मनुष्य द्वारा होना असम्भव है। यदि ब्रह्मा चाहें तो वे भी इस काम को नहीं कर

सकते ! सृष्टि का राज्य यह नीति का राज्य है। जिस तरह पहले आधी कली विकसित होकर फिर उसमें फूल फूलता है, पश्चात् वह सूख कर गिर पड़ता है; उसी प्रकार मनुष्य का जन्म, बालकपन, कैशोर, यौवन, वार्धक्य और मरण है। राष्ट्र की भी इसी प्रकार निराली निराली अवस्थायें हैं। सृष्टि के नियम सबों को एक सरीखे अलंघ्य और अपरिहार्य हैं। राष्ट्र के बालकपन में समाज चन्द्रमा को देख कर हँसता है। वज्रपात से रोने लगता है और मेघाच्छन्न होने से भयभीत होकर काँपने लगता है। कैशोर अवस्था में समाज यज्ञादिक कर्म में रमण करता है। यौवन दशा में बालकपन का हास्य और भय, कैशोर अवस्था की क्रीड़ा उसके मनको आनन्द नहीं पहुंचाता। इन्द्र, चन्द्र, सूर्य इत्यादि सब नियम के दास हैं। वे सब नियम की सुन्दर शृंखला द्वारा बँधे हुए हैं। और यह देख कर, मनुष्य के हृदय में ज्ञान तृष्णा उत्पन्न होती है। सुदर्शन नीति चक्र और उसके नियंता का ज्ञान होने की इच्छा उत्पन्न होती है। सत्ययुग यह आर्य-समाज का बालकपन, त्रेतायुग कैशोरावस्था; और वह अब शीघ्र ही समाप्त होकर यौवनावस्था के कारण, युगान्तर का शीघ्र ही, आरम्भ होगा। इस युग के अभिनय-कर्ता तुम, यह अर्जुन और मैं; अतएव सब सङ्कटों को दूर करके, हम लोगों को आर्य-राष्ट्र-आर्य समाज—की नौका को शान्ति पूर्वक उस पार कर देना चाहिए। वीर्य का विकाश अर्जुन में और ज्ञान का तुम में सबों से अधिक है। हम लोगों के कर्म का मार्ग आगे बहुत ही विस्तीर्ण-दूर तक फैला हुआ—है उस पर आक्रमण करना चाहिए"।

व्यास ने कहा:—"कृष्ण ! अनन्त सागर के किनारे बालक

बालू लेकर खेलते हैं। उसी बालू के खेल के समान मनुष्य का बाहुबल और ज्ञान भी यत्किञ्चित् है। मनुष्य को एक पतंग, एक कीड़ा, एक पत्ता तक भी निर्माण करना—बनाना—असम्भव है। अतएव वह यदि एक महान् राष्ट्र के भविष्य को मेट देना चाहे—उसको उलट पलट देना चाहे—तो यह बात कब सम्भव है? प्रकृति देवी ने अश्रान्त परिश्रम द्वारा जो प्रवाह आज तक बराबर दो युग पर्यन्त बहाया; उस प्रवाह की गति को बन्द कर देना, रोक देना, क्या तुम्हारे लिए साध्य है? मनुष्य के ज्ञान के सामने क्या सृष्टि की नीति निष्फल हो जायगी?"

कृष्ण ने कहाः—"उस प्रवाह की गति को बन्द करना अथवा रोक देना, मनुष्य की शक्ति के बाहर है। परन्तु राष्ट्र की प्रगति के प्रवाह को घुमा कर केवल स्वार्थ बुद्धि से उसे मरुदेश की ओर जो लोग ले जाना चाहते हैं, उनके प्रयत्न को निष्फल करके निष्काम बुद्धि द्वारा उसकी गति को पुनः अनन्त सागर की ओर घुमा कर लगाना चाहिए। नारायण ही अनन्त सागर हैं। सृष्टि-नियम की गति सरल और सुन्दर है। उसकी नीति का लक्ष्य अनन्त उन्नति की ओर है, अवनति की ओर नहीं। मानव जाति अपूर्ण है; केवल नारायण मात्र पूर्ण हैं। पूर्ण ब्रह्म को आदर्श मान कर हमें स्वयं अपूर्ण दशा से पूर्ण दशा की ओर जाना चाहिए। और सारी मानव जाति को उन्नति के मार्ग पर लगा देना चाहिए। किसी वस्तु का अभाव होने पर, उसकी अपेक्षा जो वस्तु मौजूद है उस वस्तु के निर्माण होने का रास्ता खुला है। अभाव और अपेक्षा इन दोनों से उन्नति होती है। दो युग समाप्त हो चुके; परन्तु इस जगत् के कितने युग हो चुके, यह बात किसे मालूम है? युग के अनुसार

श्रेष्ठ उन्नति अवतीर्ण होती है, तब हम सब उसको उस युग का अवतार कहते अथवा मानते हैं। जिस समय पर आधी पृथ्वी जलमय थी उस समय पानी में मत्स्यावतार हुआ। इसके बाद जब पानी सूख चला, तब कूर्मावतार हुआ। पानी सूख जाने पर, जब पृथ्वी दृढ़ हुई, उस पर वनस्पति और बड़े बड़े वृक्ष उत्पन्न हुए, तब वराह-सृष्टि निर्माण हुई। आधा भाग पशु और आधा भाग मनुष्य ऐसी विस्मय-कारक उसकी मूर्ति थी। पश्चात् धीरे धीरे पशुत्व का लोप होकर अपरिणत मानव का अर्थात् वामन का जन्म हुआ। उस समय पृथ्वी पर चारों ओर घना वन, अरण्य, होने के कारण हिंसक जीवों की बहुतायत थी। ऐसे समय में वामन को तीन पग पृथ्वी मिलना कठिन हो गया था! उन्नति-चक्र फिर भी बन्द न हुआ। वह बराबर दिनों दिन तरक़्क़ी करता गया और हाँथ में कुठार लिए परशुराम का अवतार हुआ। हिंसक जीवों के साथ उनका युद्ध आरम्भ हुआ। परशुराम के शरीर में पशु भाग नहीं था; परन्तु पशु-वृत्ति उनके हृदय में प्रबल थी। धीरे धीरे इस पशु-वृति का ह्रास होने लगा। उसी समय संसार में युगान्तर का संचार हुआ। मनुष्य का वास्तविक जन्म उसी समय हुआ। धीरे धीरे उन्नति होने लगी और मानव जाति के कैशोरावस्था प्रेम का अवतार-रामचन्द्र-उत्पन्न हुए। यही था त्रेता युग का अवतार। मुनिवर! क्या अब कैशोरावस्था के बाद मनुष्य जाति की यौवनावस्था आने वाली नहीं है? क्या उन्नति का सुदर्शन चक्र यहीं पर स्थिर हो जायगा? नहीं, ऐसा कदापि न होगा। इस चक्र को विश्राम नहीं है; यह चक्र कभी शांत होने वाला नहीं। उन्नति का प्रीतिमय, सुखमय और पवित्र

मार्ग हमारे आगे है। राष्ट्र की जीवित नौका को हमें उसी राह पर ले चलना चाहिए।"

व्यास ने कहाः—"वत्स ! क्या अकेले तुमसे यह काम पूरा हो जायगा ? मुझे ऐसा नहीं मालूम होता। समस्त ब्राह्मण, ऋषि, चार वेद, श्रुति, स्मृति ये सब बालू की भीत के समान अस्थिर नहीं हैं। जल के प्रवाह में यह बह जाने वाली नहीं हैं। कृष्ण! यद्यपि तुम्हारा ज्ञान अनन्त है और शक्ति अपार है, तो भी क्या राष्ट्र की प्रगति के प्रवाह के साथ तुम्हें क्रीड़ा करना बन सकेगा ? ग्रह, तारागण, देश, काल और जिसकी लीला दुर्ज्ञेय है ऐसा यह मानस जगत्, हमको बिना बताए—हम पर बिना प्रकट हुए—ये सब राष्ट्र की स्थिति को बदलते जाते हैं—राष्ट्र का रूपान्तर होता जाता है। सृष्टि की नीति का परिणाम राष्ट्र के भविष्य सागर पर होता है। वहाँ पर जल के एक बिन्दु के समान अकेले मनुष्य के हाथ से क्या हो सकेगा"?

कृष्ण ने सोच कर कहाः—"अकेले ? मुनिवर! मैं अकेला नहीं हूं। विधाता-विश्वरूप-नारायण मेरे सहायकर्ता हैं। हम सब नारायण के अंश हैं। सोऽहम् मैं नारायण! मैं सर्वभूतमय हूं। सारे प्राणियों में मैं वास करता हूं। मैं विश्वरूप हूं। व्यास, और अर्जुन, तुम दोनों मेरा विश्व रूप देखो। ग्रह, उपग्रह, सूर्यमंडल, और इनके द्वारा हुआ शतदल देखो।

"मैं विश्व में व्याप्त हूं—व्यापक हूँ। मैं विश्व का जीवन हूं। मुझी से चराचर की उत्पत्ति हुई है। जन्म और मरण यह दोनों स्थिति के रूपान्तर हैं। यह सब मेरी लीला है। 'एकमेवाद्वितीयम्' भगवान् मैं ही हूं। देखो, मेरे एक हाथ में नीति-

चक्र सुदर्शन है । दूसरे में विश्व-कंठ रूप महा शङ्ख है । यह सदैव नीति-चक्र की घोषणा किया करता है । यह महा शंख तार स्वर से सदैव कहता है कि भ्रान्त मानव ! "सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज" । अनन्त विश्व यह मेरा धर्म-मन्दिर है । संसार का कल्याण, सब भूतों का हित-यही इसके पाये हैं । उसका कलश सुदर्शन नीति चक्र है । साधना, निष्काम कर्म और लक्ष्य नारायण हैं । व्यास ! तुम अपने ज्ञान बल से और अर्जुन ! तुम अपने बाहुबल द्वारा, नारायण को अपने सब कर्मों का फल समर्पण करके, इस सनातन धर्म का—इस महा नीति का, भारत में—सारे जगत् में—प्रचार करो । स्वार्थ बुद्धि का नाश करके निष्काम कर्म को करने से मानो प्रेममय और पवित्र महाभारत की स्थापना होगी । इस महाव्रत को स्वीकार करो ।"

व्यास और अर्जुन ने ऊपर की ओर निगाह उठाकर देखा । उनको उस समय जो ऐश्वर्य युक्त मूर्ति दिखाई पड़ी उसका तेज अलौकिक था । उस नील शरीर से चन्द्रिका की वर्षा होती थी । अब वह पहले का वासुदेव न था । देखते देखते ही उसके तेजस्वी शरीर ने बढ़ कर सारे चराचर विश्व को व्याप्त कर लिया ।

उसके पाँव के नीचे सूर्य्यमण्डल शोभा दे रहा था । उसके शरीर की शोभा और आँखों का तेज अपूर्व था । हाथ में शङ्ख और सुदर्शन चक्र था । उसके सामने एक प्रकार का दिव्य प्रकाश पड़ता था । संगीत और सौरभ का भी उस मूर्ति में समावेश हो रहा था । प्रकृति के स्थान पर पुरुष का अधिष्ठान होकर, एक प्रकार का महत्संमेलन हो रहा था । चराचर जगत् एक तत्त्व में परिणत हो रहा था । व्यास मुनि का शरीर

आनन्द के कारण प्रफुल्लित हो रहा था। हृदय निर्मल और प्रीति पूर्ण हो रहा था। गम्भीर स्वर से उन्होंने कहाः—"मैं इस व्रत को स्वीकार करता हूं।" अर्जुन ने भी हाथ जोड़ कर गद्गद् स्वर से कहाः—"मैं भी इस व्रत को स्वीकार करता हूं।"

उस समय श्रीकृष्ण जी आनन्द पूर्वक बैठ गए और तीनों ने ऊपर देख कर कहाः—

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः।
केयूरवान् कनककुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः॥

तीसरा अध्याय

नारी-धर्म

करुणा की साक्षात् मूर्ति, सुभद्रा शान्तिपूर्वक शिविर में बिछौने के ऊपर लेटी हुई हैं। उनके केश-लटें-छूटी हुई अस्तव्यस्त पलँग पर पड़ी हुई, अपूर्व शोभा दे रही हैं। उनके पास ही सुलोचना बैठी कुछ सोच रही है। कुछ समय तक सुलोचना योंहीं बैठी बैठी मन ही मन कुछ सोचा की, पश्चात् उसने सुभद्रा से इस प्रकार बात चीत करना शुरू किया।

"मेरी प्यारी सुभद्रा! तुम ऐसा करोगी तो कैसा होगा? तुम रात रात भर नहीं सोतीं। तुम्हें खाना पीना कुछ नहीं सुहाता। रात दिन इस शिविर से उस शिविर में घायल हुओं की तू सेवा सुश्रूषा किया करती है। तेरी आँखें गड्ढे में चली गई हैं। मुख तेजहीन होगया है और केश मलिन हो गए हैं। युद्ध को आरम्भ हुए आज ग्यारह दिन हो गए। इतने दिनों से मैंने तुझे एक दिन भी हँसते खेलते नहीं देखा। काल के गाल में जाने वाले, मनुष्यों के लिए, अपनी जान को इतना दुःख देकर, तुझे क्या मिलेगा"?

सुभद्रा ने कहाः-"स्त्रियों को इससे अधिक और क्या सुख मिलने की आशा है? रोगी को आराम मिले, ऐसा

उपाय करना, दुःखियों पर दया करना, शोकाकुल लोगों को धीरज देना, उनको शान्त करना; ये सब बातें स्त्रियों के लिए एक स्वाभाविक कर्म हैं। इस कर्म को करने से, जितना सुख उन्हें मिल सकता है उतना किसी और कर्म से नहीं मिल सकता। नारायण ने जिस प्रकार अग्नि निर्माण करके, जल निर्माण किया उसी प्रकार रोग, शोक, दुःख भी उत्पन्न करके स्त्रियों का कोमल व प्रेममय हृदय भी निर्माण किया। यदि स्त्रियों का जीवन, प्राण-हीन प्राणी के ऊपर अमृत सिंचन करने अथवा दुःखियों को शान्ति देने के लिए न हुआ तो फिर उसे और सुख क्या? महान् पुरुष, स्वधर्मरक्षणार्थ, अपना शरीर युद्ध में त्याग करते हैं; यह बात हम तुम सब सदैव देखते हैं; अतएव अपना स्त्रीधर्म क्या हमको पुरुषों के समान ही पालन न करना चाहिए"।

सुलोचना ने कहाः—"दुःखी और घायल हुओं की सेवा करना स्त्रियों का धर्म है, इस बात को मैं स्वीकार करती हूँ, परन्तु क्या शत्रु की सेवा हमें करना चाहिए? शत्रु-सेना के घायल सिपाहियों को युद्ध-स्थल से उठा लाना, और उनकी सेवा-शुश्रूषा करना, हमें उचित है? तुम इतना कष्ट क्यों सहन करती हो?"

सुभद्रा ने कहाः—"शत्रु? शत्रु क्या अपने समान मनुष्य नहीं है? क्या उनका शरीर रक्त-मांस से नहीं बना है? तुममें और मुझ में प्राण हैं, क्या शत्रु में प्राण नहीं? बरतन अलग अलग होते हैं, परन्तु उनमें जो जल भरा हुआ रहता है, वह सब जल एकही है। क्या शत्रु क्या मित्र, शस्त्र-प्रहार से, सबों का शरीर, ज़ख़मी होता है। सबों को एक सरीखी व्यथा होती और सब मृत्यु के मुख में समान रूप से जाते हैं। एकही

ईश्वर सबों के शरीर में व्यापक है—वास करता है । तुम और मैं कौन; और शत्रु मित्र कौन ? यह अपना, यह पराया, यह तुम कैसे कह सकती हो ?"

सुलोचना ने सोच कर कहा:—"तो क्या तुम अपने शत्रु—कर्ण, दुर्योधन इत्यादि—को भी मित्र कहोगी ? क्या तुम दुर्जन के दुःख में दुःखी होगी ? विष और अमृत को समान समझोगी ? "

सुभद्रा ने कहा!—"जो पुण्यवान् हैं उनके मन में क्या ऐसी भावनायें उत्पन्न होंगी ? सच्चा ज्ञानवान् होना अपने हाथ में है । पापी के ऊपर जो दया अथवा प्रेम करता है, उस मनुष्य को मैं अच्छी तरह पहचान सकती हूँ; वह मुझे बड़ा प्यारा लगता है । वह प्रेम का अवतार है । देखो, वायु सुगन्धि और दुर्गन्धि दोनों को समान भाव से ग्रहण करता है । समुद्र के उदर में, उज्ज्वल रत्नों को स्थान मिलता है; उसी प्रकार बालू में भी उन्हें स्थान प्राप्त होता है । समदृष्टि और सुलभमय प्रेम संगीत की शिक्षा पाने का ही यह स्थान है । यहीं पर सर्वत्र समबुद्धि, समान प्रेम और समान दया दिखाई पड़ती है । हम स्त्रियाँ विश्वजननी का प्रतिबिम्ब मात्र हैं । शत्रु और मित्र यह भाव हम लोगों के जानने के लिए नहीं है । पर्जन्योदक के समान सर्वत्र जननी के प्रेम की वर्षा हमको करना चाहिए । मित्र के ऊपर जो प्रीति की जाती है, वह प्रीति सकाम होने से, तुच्छ है । शत्रु और मित्र दोनों को जो समान भाव से देखता है वही यथार्थ में देवता है । छोटे छोटे बालकों के लिए माँ बाप का मुख ही सारा संसार है, इस के सिवाय उन्हें और किसी वस्तु का ज्ञान नहीं । परन्तु ज्योंही वे धीरे धीरे बढ़ते जाते हैं उन का ज्ञान बढ़ता जाता है और

उन्हें अपने भाई बहन से भी परिचय होता है। यौवनावस्था में पति-पत्नी प्रेम रंग में मग्न होकर उनके प्रेम की तरंगें पृथ्वी और आकाश में व्याप्त हो जाती हैं। इसके आगे इस प्रेम की अनेक शाखाएं फूटती हैं। बाल्य-प्रेम, यौवन-प्रेम के पश्चात् यह प्रेम जननी-प्रेम में बदल जाता है। अतएव यह प्रेम-धर्म अब तक मुझे सारा संसार कृष्ण-अर्जुनमय दिखाई पड़ा। परन्तु अब वही प्रेम भ्रातृ-स्नेह से परिपूर्ण होकर सारा संसार अभिमन्यु और उत्तरामय दिखाई पड़ता है। माता, पिता, भगिनी, भ्राता, पति, पुत्र किंबहुना यह सारा महाविश्व, इन सबसे प्रेम की तृप्ति नहीं होती। इस विश्व को छोड़कर जो कुछ अनिर्वचनीय अनन्त है उसी की ओर प्रेम की नदी का प्रवाह बह रहा है।"

सुलोचना अपने विनोदी स्वभाव के कारण, गाल पर हाथ रक्खे, बैठी सब बातें सुना की; और जब सुभद्रा ने अपनी प्रेमकथा समाप्त की, तब उसने हँसकर कहाः—"सुभद्रा! तुम्हें प्रेम के सिवाय इस जगत् में और कुछ नहीं दिखाई पड़ता और मुझे लड़ाई झगड़े के सिवाय और कुछ नहीं सूझता। मैं द्वारिका छोड़कर यहां आई; परन्तु लड़ाई झगड़ा करने की वासना तृप्त न हुई और न मेरी वाचाल जिह्वा को यहां तृप्ति मिलने की आशा है। जब जब मैं तुम्हारे पास आती हूं तब तब तुम बावली सरीखी बक बक कर उठती हो और जब उत्तरा के पास जाती हूं तब तुम मुझे देखकर हँसती हो। अगर तुम्हें गाली देती हूँ तो भी तुम हँसती हो। मारती हूँ तो भी हँसती हो। हँसने के सिवाय तुम्हें और कुछ नहीं सूझता। स्त्री जन्म मिलना दुर्लभ है।

यदि इसे पाकर लड़ाई झगड़ा न किया तो बताओ अपना जन्म सार्थक कैसे होगा ?"

सुभद्रा ने कहाः—"सच है, उत्तरा केवल हास्यमय पुतली है। पुष्प वन में चन्द्रमा के प्रकाश के समान वह शोभायमान है। उसका हृदय केवल आनन्द का स्रोत है। संसार की साया उस पर अबतक नहीं पड़ी। उसका हँसना, बोलना, आनन्द, प्रेम और सरल स्वभाव; यह सब देख कर मुझे मालूम होता है कि मेरी उत्तरा इस लोक की नहीं है। कृष्णार्जुन का शिष्य अभिमन्यु और चेली उत्तरा का विवाह, यह रमणीयता और प्रतिमा का मानो अपूर्व सम्मेलन है।"

सुलोचना ने कहाः—"वह कुछ भी हो, परन्तु लड़ाई झगड़ा करने के सिवाय और मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता। कांटे के बिना कमल शोभा नहीं देता।"

"क्या ? रात दिन तुम दोनों कलह करती हो। तुम्हारी प्रेमकलह बड़ी सुखदायी होगी !"

"उनके दो मूर्ख गुरुओं ने जो उन्हें शिक्षा दी है वह अपूर्ण है। मैं उसे लड़ाई झगड़ा सिखाने का प्रयत्न करती हूं; परन्तु उसके हँसने पर, मेरा श्रम निष्फल जाता है।"

सुभद्रा ने कहाः—"तुम इस बालक के पीछे क्यों लगी हो; क्या तुम्हारी कलह की अनिवार्य इच्छा अन्त कहीं तृप्त नहीं हो सकती ?"

सुलोचना ने कहाः—"सुभद्रा ! तुम क्या कहती हो ? जब सत्यभामा की कलह इच्छा समुद्र द्वारा पूर्ण न हुई तब मेरी एक दो घूँट पानी पी कर कैसे तृप्त हो सकती है ?"

"तू मेरे साथ चल। मैं तेरा यह रोग दूर कर दूँगी।

चलो, घायल वीरों की सेवा करके अपने नारीधर्म का पालन करें ।"

"तुम्हारा नारीधर्म तुम्हीं को मुबारक हो । मुझे उसका बिलकुल इच्छा नहीं । कृष्णार्जुन की सेवा मेरे लिए काफ़ी है! उत्तरा मेरी कन्या और अभिमन्यु मेरा पुत्र है । मैं इन दोनों को अपने हृदय से लगा कर रहूँगी । बस, यही मेरा नारीधर्म है ! "

सुलोचना के कथन का मर्म समझ कर सुभद्रा का हृदय उमड़ आया । उसकी आँखों में आँसू भर आए । उसने कहा:- "अपने बालक की माता बनना अथवा अपनी माता का पुत्र कहलाना, इसमें बड़प्पन क्या है ? किसी दूसरे के बालक की माता बनना अथवा दूसरे की माता का पुत्र कहलाना, इसीमें तो पुण्य है ! "

इतने में महर्षि व्यास का एक शिष्य आया और उसने भीतर जाने की आज्ञा चाही। सुभद्रा की एक सखी ने भीतर आकर उस का सन्देशा कहा । सुभद्रा ने कहा :- उसे सम्मान पूर्वक भीतर लिवा लाओ उसके भीतर आने पर अभिवादन के लिए सुभद्रा उठने लगीं । परन्तु उसने ऐसा करने से मना किया और बोला:—"जिस धर्म की मैंने दीक्षा ली है, उस धर्म की आप साक्षात् मूर्ति हैं । अतएव आपको नमस्कार करना मुझे उचित है । जिस धर्म के आत्मा कृष्ण, अर्जुन बाहुबल और पुण्यमय-प्रेम का एक मात्र स्रोत, आप जिस धर्म की मूर्ति-काया हो, उस धर्म की अमृतमय भाषा पवित्र गीता मेरे गुरु जी ने आशीर्वाद सहित आप के अर्पण की है। मानवजाति के अदृष्टाकाश में विराजमान होकर गीतामृत का सिंचन

करो। तप्त हुए जगत् के प्राण उस की शीतलता से शान्त होंगे।"

सुभद्रा ने प्रणाम करके उस पवित्र ग्रंथ को अपने हाथ में ले लिया और उसे अपने मस्तक से लगाया।

चौथा अध्याय

सुख--तत्त्व

कृष्ण ने कहा:—"गुरुवर! वृन्दावन में गायें चराते समय मैंने एक प्रकार का दिव्य संगीत सुना था। न मालूम मन और प्राण को मोह लेने वाले, उस गीत को आकाश में अप्सरा गा रही थीं अथवा कोई देव कन्या? उस गीत का मतलब यह था:—

"इस क्षुब्ध जगत् में होने वाला हाहाकार क्या तुझे सुनाई नहीं पड़ता? लोगों को साम्राज्य, समाज और धर्म, कहीं भी शान्ति नहीं प्राप्त होती। अतएव चारों ओर हाहाकार मच रहा है। हर एक राज्य में कलह फैली हुई है और स्वार्थ ने सारे साम्राज्य में अपना पूर्ण अधिकार जमा लिया है। क्षत्रिय और ब्राह्मण, अपने प्रभुत्व की इच्छा से, वैद्युताग्नि से भरे हुए, दो बादलों के समान एक दूसरे को टक्कर मार कर, छिन्न भिन्न करना चाहते हैं। क्या इसका निवारण करने के लिए तू कुछ उपाय न करेगा? धर्म सम्बन्ध में भी लोग मोह के अंधकार में, पड़े हुए मृगतृष्णा के समान दुःख भोग रहे हैं। उनको देख कर, क्या तेरे हृदय में दया का संचार

नहीं होता ? सब प्राणियों पर दया करना, उनका हित साधन करना, यही धर्म और भक्ति पूर्वक नारायण को अपने कर्मों का फल अर्पण करके, इसी धर्म का साधन करना ही केवल कर्म है। तेरा बालकपन पूरा हो गया, अब तू युवा हुआ; अतएव कर्मक्षेत्र में अग्रसर हो। कातर और करुण स्वर से, संसार तुझे बुला रहा है। आगे बढ़, और जगत् का दुःख निवारण कर !"

इतना कह कर श्रीकृष्णजी चुप हो रहे। व्यास मुनि चित्र के समान, तटस्थ होकर, विचार-सागर में मग्न हो गए। फिर श्रीकृष्ण बोलेः—"जिस समय मैं अध्ययन कर रहा था, उस समय यह करुण-सङ्गीत मेरे कानों में पड़ा। इस गीत को सुन कर मेरे मन में नाना प्रकार की शंकायें उत्पन्न हुईं। इस गीत को किसने गाया और वह कहां है ? यह चिन्ता मुझे पैदा हुई। एक गोपाल का बालक, सारे संसार का दुःख किस प्रकार दूर करेगा ? निर्बल पतंग हिमालय को कैसे उखाड़ कर फेंक सकेगा ? मैं किस प्रकार से इस देश का उद्धार कर सकूंगा ? इसी प्रकार के प्रश्न मेरे हृदय में उठते और शान्त हो जाते। परन्तु जिस समय मुझे उस संगीत-ध्वनि का स्मरण होता मैं फिर व्याकुल हो जाता। कभी कभी मेरे मन में वैराग्य की जागृति होती। मेरे मन में आता कि मैं संसार त्याग करके, सन्यास ग्रहण करूं, और नवीन धर्म का प्रचार करके, अपना और संसार का दुःख निवारण करूं। परन्तु मैंने ऊपर की ओर देखा, चारों ओर देखा तब मुझे ज्ञान हुआ कि जगत् का कितना विस्तार है ! सुख और सौंदर्य युक्त होकर, कर्म संगीत से भरे हुए हैं ! आकाश में ग्रह और तारे हैं; पृथ्वी पर पहाड़, वृक्ष, लता, घास, नदी और समुद्र

भी हैं। जन्म के साथ कर्म लगा हुआ है और वह आगे आगे चलता है। यही कर्म नियम है। कर्म करने का स्थान जन्म है। तो फिर क्या संसार, घर, माता पिता, पत्नी, पुत्र यह सब भ्रम है? क्या आपकी इच्छा है कि मैं हृदय की उच्चतम और पवित्र प्रवृत्ति का नाश करके, जन्मभूमि और जन्मगृह का त्याग करके, वन में जाकर, वनवासी होकर रहूँ? मैंने माता, पिता, पत्नी, पुत्र इनमें से एक पर भी प्रेम नहीं किया तो सम्पूर्ण मानव जाति पर, उसी प्रकार अचिंत्य और अनन्त परमेश्वर पर प्रेम कैसे कर सकूंगा? यदि जन्मभूमि पर मैं प्रेम नहीं कर सकता हो कल्पनातीत विश्व पर मैं कैसे प्रेम कर सकूंगा? गंगा जी का आरम्भिक प्रवाह, जहां से वे निकली हैं, बहुत ही कम है; परन्तु जहां पर वे सागर में जाकर मिली हैं, उनका विस्तार और प्रवाह बहुत ही अधिक हो गया है। वृक्ष का अंकुर आरम्भ में बहुत छोटा होता है परन्तु वही धीरे धीरे बढ़ कर सारे वन को आच्छादित कर लेता है। घर छोड़ कर वन को जाने से क्या मनकी वासनायें कम हो जायँगी? कांटेदार वृक्ष को उखाड़ कर यदि उसे दूसरी जगह पर लगाया जाय तो क्या उसमें वहां कांटे न उत्पन्न होंगे? संसार में ऐसी अनेक चीज़ें हैं जो मनुष्य को मोह लेती हैं—इन्द्रियों का आकर्षण कर लेती हैं; जिसके द्वारा वासना का उदय होता है। क्या वन में जाकर इन्द्रियदमन करने से वासनानल शान्त हो सकती है? अंधे को देखने और बहरे को सुनने की क्या प्रबल इच्छा नहीं होती? यदि मनुष्य जाति चक्षुहीन अथवा कर्णहीन हुई तो क्या उसे परमार्थ लाभ हो सकेगा? ठीक है, सत्य धर्म का यह मार्ग नहीं है। इस अधर्म के मार्ग को देख कर मेरा

हृदय बहुत ही अधिक व्यथित हुआ। यदि इन्द्रियों और वासनाओं का नाश हो गया तो फिर क्या मनुष्य का मनुष्यत्व बना रहेगा? यदि वृक्ष के फल, फूल, शाखा और पत्तों का नाश कर दिया जाय तो क्या वृक्ष का वृक्षत्वपना रह सकता है? मनुष्य का शरीर और उसकी इन्द्रियां ही सुख और शिक्षा-ज्ञान का साधन हैं। वासना और इन्द्रियां ही मनुष्य को सौख्य के मार्ग की ओर ले जाती हैं। क्या विधाता इच्छारहित है? इस संसार को देखो। सारा संसार सुखी हो ऐसी उसकी प्रबल इच्छा है। वायु इत्यादि देवता उसकी अश्रान्त और अपार इच्छा की घोषणा सदैव करते रहते हैं। विधाता के वासना-सागर में जब मनुष्य की वासना-नदी जाकर मिल जाती है तब मनुष्य और जगत् का कल्याण होकर सुख प्राप्त होता है। स्वसामर्थानुसार यदि हम लोग जग के कल्याण के लिए यत्नवान् हुए तो हम लोगों को भी उत्तरोत्तर सुख-प्राप्ति होती जाती है। गृह में क्या अथवा वन में क्या? मनुष्य का सनातन धर्म यही है कि जग के कल्याण का उद्योग करे। श्रेष्ठतर धर्मक्षेत्र वन नहीं है; घर ही सर्वोपरि धर्म कार्य करने के लिए क्षेत्र है। मां, बाप, पत्नी, पुत्र, गृह ये ही सब धर्ममार्ग आक्रमण करने का आश्रय हैं—इन्हीं के सहारे से धर्म-तत्त्व पहचना जाता है—इसी मार्ग पर धीरे धीरे चले जाने से सुख-तत्त्व की प्राप्ति होती है। नारायण ही एक मात्र सुख का सागर हैं। सच्चा सन्यास वही है कि मनुष्य का धर्मक्षेत्र जो उसका गृह है, उसी में रह कर, जग के कल्याण की चेष्टा करता रहे। इसी व्रत का उद्यापन करना चाहिए। यही बात सोच विचार कर मैं अपने घर वापस आया। महाविश्व ही घर, इस

विश्व के असंख्य प्राणी ही महा परिवार और इस अनन्त विश्व में रह कर उसको चलाने वाला एक ही प्राण है। यह विश्व एक बहुत ही बड़ी पिपासा से व्याकुल हो रहा है। सुख-तृष्णा ने उसे चारों तरफ़ से घेर लिया है। मत्त मधुकर के समान वासनारूपी पुष्प में मनुष्य सुख की तलाश करता है। पानी का एक विन्दु समुद्र के जल से भिन्न नहीं है। इस सुख-तत्त्व को न समझने के कारण संसार में दुःख से हाहाकार हो रहा है। जिस अनन्त नीतिचक्र ने मनुष्य को मनुष्यत्व दिया और जिस से मनुष्यत्व की वृद्धि होती है उस नीतिचक्र को ही मानव-धर्म कहना चाहिए। इसका ज्ञान अपने को जिससे होता है वह शास्त्र और इस धर्म का अभ्यास करने और उसके अनुसार आचरण करना ही कर्म है। इस मनुष्यत्व की गति चिदानन्द नारायण स्वरूप समुद्र की ओर है। मनुष्यत्व अनन्त है और मानव जाति का सुख भी अनन्त है, और इसका नारायण स्वरूप सागर से संगम होता है। यही संगम मोक्ष, अनन्त सुख, कैवल्य पद है। इस यहा सुख-तत्त्व का आविष्कार करके, नवीन धर्म का प्रचार करना और स्वयं उदाहरण बन कर, लोगों को दिखला देना, जिससे कि वे इस धर्म का अनुकरण करके दुःख-सागर से पार हो जावें, यही सोचता हुआ मैं घर पर आ पहुंचा। परन्तु यह व्रत कितना कठिन है! मुझे मालूम न था कि कुरुक्षेत्र ही मेरा कर्मक्षेत्र होगा। नारायण! आपकी लीला अगाध है!"

व्यास मुनि ने कहाः—"कृष्ण! यह बात तुम्हारे ध्यान में नहीं आती कि इस वज्राघात, भयंकर बादल, घोर दावानल अथवा जल-प्रलय से ही विश्व का अचिन्त्य कल्याण होगा। इस वज्राघात से बादल छिन्न भिन्न होकर भारता-

काश स्वच्छ, निर्मल और पवित्र हो जायगा। बड़वानल द्वारा सारे कंटक जल कर भस्म हो जायँगे। जल-प्रलय से पृथ्वी स्वच्छ होकर हरी भरी होने लायक़ हो जायगी जिस के कारण से नवीन शक्ति और धर्म के बल का संचार होगा"।

कृष्ण ने कहाः—"महर्षि! जो आपने कहा कि अभी यह बात तुम्हारे ध्यान में नहीं आती यह बात बहुत ठीक है। मनुष्य की दृष्टि बहुत थोड़ी है। अदृष्ट अनन्त है। इस बात में किसी प्रकार का सन्देह नहीं। अनन्त तिमिर में मनुष्य जुगनू के समान एक अदृष्ट पदार्थ के हाथ में कठपुतली की तरह नाचता है। मैं जहां शान्ति स्थापित करने गया वहाँ घोर संग्राम में जाकर फँस गया। मैं जहां धर्म का साम्राज्य फैलाने गया, वहां पर अधर्म का भयंकर स्वराज्य पाया! यदि किसी के पैर में कांटा लगा हुआ मैंने देखा तो मेरे मर्मस्थान में विषम वेदना उत्पन्न हुई। परन्तु आज ग्यारह दिन व्यतीत होगए, मैं इस घोर युद्ध और भयंकर हाहाकार को अपना हृदय कठोर किए देख रहा हूं। ज्वालामुखी पर्वत के समान शान्त दिखाई देने वाला मैं, बाहर से सौम्य मूर्ति दिखाई पड़ता हूं परन्तु मेरा हृदय भयंकर अग्नि धारण कर रहा है।"

व्यास ने कहाः—"वत्स! मंगलमय करुणालय, ज्ञान सागर नारायण की सृष्टि में सदैव कितनी हत्यायें और कितना हाहाकार होता है! परन्तु तो भी उसका मुख प्रीतिमय और प्रेम के दर्पण समान स्वच्छ, आनन्दयुक्त, शान्त, धीर और प्रफुल्लित बना रहता है। भविष्य काल में क्या होगा इस बाबत तुमसे क्या कहूं? तुमको उसका ज्ञान ही है।"

कृष्ण ने कहाः—"मुनिवर! आपकी कृपा से भविष्य काल

का मुख अवलोकन करूंगा। कुरुक्षेत्र में अर्जुन के रथ पर बैठा हुआ भविष्य काल की वाणी के सिवाय और कुछ मुझे सुनाई नहीं पड़ता। उस वाणी को मैं कहता हूं, सुनोः—'हे दयानिधे! मेरे दुःख की ओर ध्यान दो। पृथ्वी का दुःख हरण करके मेरा उद्धार करो'। संसार में क्या हाहाकार मचा हुआ है! मेरे हाथ से संसार का दुःख न तो दूर हुआ और न आगे होने की आशा है।"

व्यास ने कहा—"तुम्हारे हाथों से दुःख दूर हो रहा है और आयन्दा होगा—इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। इस समय जो चिह्न दिखाई पड़ते हैं उस पर से यह बात स्पष्ट जानी जाती है। कृष्ण! तुमने जन्म लिया। द्वापर युग शेष हो रहा है। नवीन अवतार, नवीन युग और नवीन धर्म का धीरे धीरे संचार हो रहा है। इस कुरुक्षेत्र में साधुओं का रक्षण, दुष्टों का दमन, अधर्म का क्षय और धर्म का साम्राज्य—इतनी बातें हो रही हैं। इस नरमेध यज्ञ को समाप्त करके धर्मरूपी साम्राज्य की पूर्ण रूप से स्थापना करो। अर्जुन का सारथ्य छोड़कर जगत् के सारथी बनो।"

कृष्ण ने कहा,—"भीष्म और द्रोण ये दोनों घोर अधर्म का सारथ्य करके मनुष्य के रक्त से पृथ्वी को स्नान कराने को तय्यार हुये हैं। क्या इस बात का स्वप्न में भी किसी को ज्ञान था? भीष्म ने दस दिन बराबर घोर संग्राम किया। अन्त में उनकी भयंकर रण-क्रीड़ा का स्मरण करके हृदय विदीर्ण हो जाता है। और अब द्रोणाचार्य किस प्रकार भयंकर समर-क्रीड़ा करके अपना रण-कौशल दिखा रहे हैं! मुझे भरोसा था कि अर्जुन सरीखे वीर का सारथी बनकर मैं दो तीन दिन में इस वज्रानल को शान्त कर दूंगा। शत्रु-पक्ष के बड़े बड़े

वृक्षों के भस्म हो जाने पर छोटे छोटे वृक्ष घास फूस सहज ही में राख हो जाँयगे। परन्तु अर्जुन का हृदय करुणा रस से भरा हुआ है। उनके हृदय में करुणा की जागृति होगी—यह बात मुझे स्वप्न में भी ज्ञात न थी। उनमें बड़वानल के समान क्षत्रिय-धर्म प्रदीप्त होकर भी करुणा ने उनको बिलकुल शिथिल कर दिया है। उनके हाथ पैर ढीले होगए। रूप और बल-वीर्य में भी पार्थ नवीन जल की धारा के समान हैं। गांडीव धनुष की झनकार ही मानो मेघ की गर्जना और उसके द्वारा छूटने वाले बाणों का समूह विद्युत्वत् है! परन्तु इस समय उनका धनुष और बाण करुणा रस में बिलकुल भीग गए हैं। जैसा उनसे काम लेना चाहिए अथवा जैसा उनसे काम निकलने की आशा थी वह पूर्ण न हुआ? उनकी आँखों में अग्नि, हृदय में शीतल जल और बाहु में अजित बल है। परन्तु करुणा के योग से उनका अंतःकरण दुर्बल हो गया है। यदि किसी अनन्वित कार्य के भयङ्कर आघात से उनका हृदय वज्र के समान कठिन न हुआ तो द्रोणाचार्य पाण्डवों की सेना का और कितने दिनों तक संहार करेंगे, यह ठीक नहीं कहा जा सकता। अर्जुन गुरुभक्त होने के कारण द्रोणाचार्य के साथ युद्ध-कार्य स्वांग के समान कर रहे हैं!"

व्यास ने कहाः—"कृष्ण! प्रचण्ड बादल अथवा अग्नि, शीघ्रही शान्त हो जाते हैं-यह नियम है। यह युद्धानल अधर्म के बल को भस्म करके शीघ्रही शान्त हुआ चाहती है। इस दावानल के शान्त होने पर नवीन धर्म रूपी चन्द्रमा का उदय शीघ्र ही होगा जिसके द्वारा चराचर जगत् को शान्ति लाभ होगी।"

"क्या आस पास किसी और मेघ की छाया का भय नहीं है?"

"हां, है। दुर्वासादिकों की मेघ-माला का भय ज़रूर है। धीरे धीरे उनका संचार होकर बहुत ही अधिक विस्तार हो जायगा। मैंने अपनी पर्णकुटी के ऊपर एक झंडा खड़ा किया है जिसके द्वारा मैं सदैव यह बात जानने का उद्योग करता हूं कि वायु किस ओर को चल रही है। उसके द्वारा मुझे इस बात का पूरा विश्वास हो गया है कि सरदृतु के यह बादल बहुत दिनों तक ठहर नहीं सकते। जगत् के शीर्षस्थान पर गगनस्पर्शी हिमाचल विराजमान हुआ है उसके पवित्र निःश्वास से मनुष्य का तप्त प्राण शीतल होगा और यह सारे मेघ छिन्न भिन्न हो जायँगे।"

कृष्ण ने कहाः—"नारायण! अर्जुन तेरा चक्र और द्वैपायन शङ्ख हैं। अर्जुन अपने बाहुबल द्वारा कुरुक्षेत्र में तेरे धर्म-मन्दिर की नीव खोद रहे हैं। विश्वकर्मा द्वैपायन इस नींव पर तेरा धर्म-मन्दिर निर्माण करेंगे। अनन्त काल तक गर्जना करने वाला, तुम्हारा शंख मानव यात्रियों को बुला कर शान्ति-गृह के उन्हें दर्शन देगा। अर्जुन का कुरुक्षेत्र क़रीब क़रीब समाप्त होने पर है और व्यास के कर्मक्षेत्र का दिनों दिन विस्तार अधिक होता जाता है। दुष्टों का दमन करना अर्जुन का और साधुओं का उद्धार करना व्यास का व्रत है। अर्जुन के पास गांडीव धनुष, नाना प्रकार के अस्त्र शस्त्र और अक्षय कवच है। और व्यास के पास ज्ञान-तत्वराशि और अविनाशी गीता है। अर्जुन ने अपने अस्त्र शस्त्र द्वारा अधर्म का नाश किया है। अब व्यास को अपनी सामग्री लेकर रण में अग्रसर होना और शंख द्वारा धर्म प्रचार करना चाहिए।"

व्यास ने कहाः—"कृष्ण ! शंख, चक्र और कवच यह सब तुम्हारे आयुध हैं। तुम जैसा बजाओगे वैसा शंख बजेगा। अर्जुन और व्यास यह तो तुम्हारे हाथ के दो अस्त्र हैं। जब मैंने सुना कि, वृन्दावन में एक दिव्य कुमार ने जन्म ग्रहण किया है और वह वहां बड़े बड़े अद्भुत कार्य कर रहा है जिसके कारण सारे गोप और गोपिकाओं ने, उसकी भक्ति में, मग्न होकर, अपने अपने शरीर का ज्ञान—देहाभिमान—खो दिया है। पत्नी पति को त्याग कर, माता पुत्र को छोड़ कर, भक्तिपूर्वक इसकी आराधना कर रहे हैं, उसी समय मैं समझ गया था कि द्वापर युग का अन्त होकर, नवीन युग का आरम्भ हो रहा है और वृन्दावन में नवीन युग का अवतार प्रकट हुआ। नः रूपनारायण! मैं तभी से तुम्हारी महिमा का ध्यान करता हूं और तुम्हारे पैरों पर आत्मसमर्पण किया है। केवल तुम्हारी लीला अवलोकनार्थ मैंने प्रभास-तीर्थ के समीप दूसरे आश्रम की स्थापना की है। कुरुक्षेत्र में तुम्हारी लीला देखने के लिए समीप ही मैंने यहां अपनी पर्ण कुटी बनाई है। इस समय मुझे और कुछ नहीं सूझता। भक्तिपूर्वक तुम्हारी भागवत और महिमापूर्ण महाभारत का गान करूं—इतना ही मुझे अपना कर्त्तव्य दिखाई पड़ता है, और बस!"

पाँचवाँ अध्याय

सम्मेलन

सुगंधित फूलों के वृक्षों पर चन्द्रमा की किरणें पड़ने से उनके नीचे ऐसा प्रतीत होता था कि मानों गलीचे बिछे हों, वहां पर शैलजा और सुभद्रा आनन्दपूर्वक बैठी हुई बातें करती हैं। शैलजा का चुम्बन लेकर सुभद्रा ने कहाः—"बहन! तुम्हें अब मेरे पास सदैव रहना चाहिए। मुझे छोड़ कर तुम कहीं मत जाना। मैं तुम्हे कहीं जाने न दूंगी। आज चौदह वर्ष से पार्थ और मैं तुम्हारी चिन्ता करती हूं। बासुक ने तुम्हें मार डाला होगा, यह समझ कर मैं बहुत दिनों तक तुम्हारे लिए व्याकुल रही। परन्तु मुझे आशा थी कि जिस प्रकार वन-पुष्पों का किसी को पता नहीं लगता परन्तु उनकी सुगन्धि चारों ओर फैल कर मनुष्य के तप्त प्राणों को शीतल करती है, उसी प्रकार तुम भी किसी न किसी दिन मुझे प्राप्त होगी, जिससे मेरे मन का सन्ताप दूर होगा। तुमने एक हिरनी के समान वन में विचरण करके बहुत कुछ दुःख सहन किए हैं, अतएव अब तुम मुझे छोड़ करकहीं न जाना।"

शैलजा कुछ देर तक चुप रही और पश्चात् यों कहना आरम्भ कियाः—"बहन ! तुम मुझ से ठीक ठीक यह कहो कि केवल वन में ही दुःख है और घर में—जिस घरके आंगन में कुरुक्षेत्र के समान घोर संग्राम हो रहा है—वहां क्या सुख है ?"

सुभद्रा का मुख गम्भीर हो गया। कुछ समय तक के लिए उसके विशाल नेत्र अलौकिक प्रतिभा से उज्ज्वल हो गए। उसने कहाः—"शैलबाला ! यह संसार सुख के लिए आतुर हो रहा है। सुख की तलाश करना हीं इस जगत् की स्थिति और गति है। यह संसार जिसने निर्माण किया वह जैसा सुखमय है उसी प्रकार उसकी सृष्टि सुखमय है। केवल मनुष्य मात्र को सुख नहीं प्राप्त होता जिसके वास्ते वह रात दिन रोया करता है। वह यह नहीं समझता कि मनुष्य को सुख न तो गृह में है न वन में और न धन में है और न राज्य में ! यहां तक कि तपस्या में भी मनुष्य को सुख नहीं !!"

शैलजा ने कहाः—"तो फिर सुख है भी कहां ?"

"तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर यह संसार स्वयं अनन्त कण्ठ से देता है। विहंग को सुख विहंगत्व में है, पशुओं को सुख पशुत्व में है, पुष्प को सुख पुष्पत्व में है, और बहन ! मनुष्य को सुख मनुष्यत्व में है।"

शैलजा ने पूंछाः—"और, तो फिर मनुष्यत्व वह कौन पदार्थ है ?"

"आत्मा, मन और शरीर मिल कर मनुष्य हुआ है। इन तीनों का चरितार्थ होना ही मनुष्यत्व है। जिस नीति द्वारा

शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक वृत्ति का पोषण होता है, वही मानव धर्म। स्वधर्म पालन करने में—अनासक्त रह कर स्ववृत्ति को चरितार्थ करना—मनुष्य जिस विचार से प्रवृत्त होता है, उसी विचार से उस को मनुष्यत्व और निर्मल सुख प्राप्त होता है।"

"देवी! यह मनुष्यत्व अथवा स्वधर्मपालन क्या वन में रहकर नहीं हो सकता?"

"बहन! इस धर्म का पालन करने के लिए सर्वोत्तम क्षेत्र गृह ही है। यह धर्म लोकहित अथवा सर्वभूत के हितार्थ ही रचा गया है।"

"तो फिर बहन! तू वन को चल। आज कल इस सारे जगत् में वन के समान लोकहित साधन करने का दूसरा प्रशस्त क्षेत्र नहीं है। यह भारतभूमि जिन अनार्य लोगों की पितृभूमि थी वे लोग आज कहां हैं और उनकी क्या दशा हुई? यह देखो! वे राज्यहीन और गृह-हीन हो गए हैं! उनको खाने तक को नहीं मिलता! जंगलों में पशुओं के समान वह इधर उधर भटकते फिरते हैं! आर्यलोग देवताओं के समान साम्राज्य और सुख का उपभोग करते हैं। उनके पास आज कल कितने शास्त्र हैं और कितने आश्रम हैं! उनके अदृश्याकाश में सूर्योदय होकर चारों ओर प्रकाश फैला हुआ है। अनार्य लोगों की आज घोर अमावास्या है। परन्तु बहन! क्या यह ऐसा ही सदैव चला जायगा? हे पतितपावन नारायण! इस पतित जाति पर तू क्या कृपा नहीं करेगा? बालकपन में मेरे पिता ने मुझसे कहा था कि, 'सुख धर्म में है और इन्द्रिय-दमन करना ही धर्म का सोपान है। राज्य, धन मुझ को न चाहिए! मेरी शैलजा धर्म की रानी होगी। वह अनार्यों

में धर्म की प्रवृत्ति करके हरिनामामृत की वर्षा करेगी और अनार्य जाति का रक्षण करेगी।' धर्म के सिवाय और किसी प्रकार से अनार्य लोगों की रक्षा नहीं हो सकती। परन्तु मैं अनाथ हूं। मेरे हाथों से क्या हो सकता है? अब मेरा मन अर्जुन के ऊपर आजाने से मैं प्रेम के लिए पागल हो गई; परन्तु इस प्रेम को शीघ्र ही शुद्धस्वरूप प्राप्त होगया। वन में अर्जुन की प्रतिमा स्थापन करके मैंने उसकी उपासना का प्रचार किया।"

सुभद्रा ने कहा:—"शुद्ध प्रेम ही स्वर्ग की सीढ़ी है। जिसके प्रेम में आसक्ति अथवा वासना की गन्ध नहीं है, वह मुझे देवता के समान पूज्य है।"

शैलजा ने कहा:—"थोड़े दिन हुए द्वैपायन मुनि इस दासी की झोंपड़ी में आए थे। उस समय मेरा जन्म सफल हुआ। अन्तर्ज्ञानी होने के कारण उन्हों ने मेरे मन का भाव समझ लिया। उन्हों ने कहा:—"शैलबाला! तुम्हारी पार्थ-पूजा अब सिद्ध हुई। प्रेम के सागर नारायण, उनकी अब तू पूजा कर। यदि तेरे मन में वासना का लेश मात्र भी रह गया होगा तो उसका नाश हो जायगा और तुझे परम शान्ति प्राप्त होगी।" मैंने प्रश्न किया कि, "नारायण विचार शक्ति के लिए भी अगम्य हैं; फिर भी मैं उनको किस तरह जानूँ और उन की कैसे उपासना करूँ?" उन्होंने उत्तर दिया:—"तो फिर तू इस युग के अवतार कृष्ण की पूजा कर। पार्थ को कृष्ण में और कृष्ण को नारायण में लय कर। परन्तु वत्स! तू ने यह योगिनी का वेष क्यों धारण किया?" मैंने विनयपूर्वक उत्तर दिया:—'यह मेरा जीवन-व्रत है। अमृत से भरे हुए आप के ज्ञानसागर से क्या मुझे एक विन्दु नहीं मिलेगा? इस दासी

को एक विन्दु मिलने दो। मैं जंगलों में घूम कर अपने वृत का पालन करूंगी। उन्होंने गद्गद वाणी से उत्तर दिया कि, तो फिर तू कृष्ण नाम का गान कर! एक विहंग के समान इधर उधर घूम कर इस पतित पावन नाम का उच्चारण कर। इस नाम से ही अनार्यों का उद्धार होगा। इस के सिवाय और मैं कोई दूसरा मंत्र नहीं जानता।" मैंने अपनी आँखों में आँसू भर कर उनके चरण स्पर्श किए और कहा कि:—"मुझे इस मंत्र की दीक्षा दो। अपने आश्रम में मुझे स्थान दो। सेवक का भेष धारण करके मैं आपकी सेवा करूंगी"। इस प्रकार मुझे गुरु के आश्रम में स्थान मिला। अब देवी कृपा कर तुम मुझे अपने चरणों में स्थान दो।"

शैलजा विह्वल होकर सुभद्रा के पैरों पर गिर पड़ी। सुभद्रा ने उसकी बांह पकड़ कर उठा लिया और उसे गले लगा कर कहा:—"शैलजा! तेरे पद-तीर्थ मेरे लिये योग्य स्थान है। नारायण! आपकी लीला अगाध है। उसे मनुष्य किस तरह समझ सके? वनभूमि का उद्धार करने के लिए शैलजा के मन को गृह की ओर से हटाकर वन की ओर लगा दिया! ख़ैर, बहन! चलो, हम तुम गृह और वन दोनों में कृष्ण नाम का गान करें और प्रेम के आलिंगन द्वारा अनार्य और आर्य इन दोनों को एक कर दें। सब लोग कृष्ण के नाम का गान करने लगें और सारी पृथ्वी कृष्ण-प्रेम में मग्न हो जाय। पतितपावन प्रेम की गङ्गा आर्यभूमि और वनभूमि दोनों का उद्धार करेगी।"

रात अधिक हुई देख शैलजा ने कहा:—"अब मुझे जाना चाहिए। अब जाते समय इस दासी की एक विनय है। कल

अभिमन्यु को रण में मत भेजिएगा। उसे मातृ–स्नेह के दृढ़ बंधन से बाँध रखना। इस बात की मुझसे प्रतिज्ञा करो।"

सुभद्रा ने पूँछा—"अच्छा ऐसा क्यों?" शैलजा ने उत्तर दिया—"कौरवों ने यह मंसूबा सोचा है कि वीर धर्म का त्याग करके—अधर्म युद्ध करके, कुमार को कल युद्ध में मार डालें और दुर्जय गांडीव का बल नाश किया जाय!"

सुभद्रा ने कहाः—"अंध–पुत्रों को अब तक भी यह समझ नहीं आई कि गाण्डीव का बल अभिमन्यु के पास नहीं, वह नारायण के पास है। शैलजा! धर्म–युद्ध क्षत्रियों का सनातन धर्म है। मैं पार्थ की पत्नी, अभिमन्यु की माता और कृष्ण की बहन हूं। कुमार को धर्म–युद्ध से पराङ्मुख करके क्या मैं अधोगति की ओर जाऊँ?"

"सोलह वर्ष के बालक को रण में भेजना ही क्या क्षत्रिय-धर्म है?"

सुभद्रा ने उत्तर दियाः— "हां, सिंह का जो धर्म है वही उसके बच्चे का धर्म है। क्षत्रियकुमार, फिर यह सोलह वर्ष का हो चाहे कम ज़्यादा, उसे रण से पराङ्मुख होना मानो अपने कुल अथवा क्षात्र–धर्म में कलंक लगाना है। यह मेरी समझ है। मेरा पुत्र सोलह वर्ष का हुआ तो भी वह महा–रथी है। युद्धक्षेत्र उसके लिए खेलने का स्थान है। धनुष और बाण उसका भूषण है। उसका बाप महावीर होकर करुणा का सागर होने के कारण रण में उसका हाथ जैसा चलना चाहिए वैसा नहीं चलता। अंध कौरव अधर्म युद्ध करके कुमार को मार डालेंगे जब यह वह देखेंगे तब उनकी क्रोधाग्नि

से कुरु-कुल क्षण भर में भस्म हो जायगा! आज ही दोपहर के समय वीर पुत्र के मस्तक पर हाथ रख कर मैंने उसे आशीर्वाद दिया है और कहा कि, पृथ्वी के ऊपर धर्म स्थापन करने के लिए युद्ध में जा और स्वधर्म पालन कर।"

शैलजा ने सजल नयन होकर ऊपर की ओर देखा और कहाः—"विघ्नहर्ता नारायण! इस बालक का रक्षण करने वाला अब तू ही है! तुमने मुझसे कहा था कि युद्ध समाप्त होने के पश्चात् उत्तरा को लेकर मैं तुम्हारे आश्रम में आऊंगा। इस वचन को पूरा करो जिससे मेरी इच्छा पूर्ण हो।"

शैलजा और सुभद्रा दोनों की आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। शैलजा इतनी रात गए क्यों आई यह बात सुभद्रा के ध्यान में आई। उसका चुम्बन लेकर सुभद्रा ने कहाः—"जग में एकान्त में रह कर, स्नेहामृत की वर्षा करने के लिए, क्या शैलजा तुमने जन्म लिया है? तुम्हारे इस छोटे से हृदय में कितना स्नेह भरा हुआ है?"

शैलजा ने कहाः—"सुभद्रा! मेरे हृदय में प्रेम की एक आध तरंग उठती है परन्तु प्रेमरूप गंगा को तुमने सदैव के लिए अपने हृदय में धारण किया है। क्षत्रियों का धर्म कितना कठिन है; यह बात इतने दिनों बाद आज मुझे मालूम हुई।"

"शैलजा! क्षत्रिय-धर्म बहुत ही कठिन है। पृथ्वी यह क्षत्रिय की पत्नी है और मानव उसके पुत्र हैं। पृथ्वी पर आज कल कितने पाप हो रहे हैं और मनुष्य कितना दुःख भोग रहे हैं! विधाता ने मनुष्य के कपाल में दुःख नहीं लिखा है। संसार यह आनन्द का साम्राज्य है, सुख का झरना है। देखो; आकाश में असंख्य बड़े बड़े ग्रह और उपग्रह भयंकर वेग से

और अचिंत्य गति से रात दिन भ्रमण करते हैं। वे परस्पर अतर्क्य प्रेम द्वारा एक दूसरे का आकर्षण करते हैं और हम मनुष्य लोग अगम्य व्रत धारण करके बहुत ही सुखपूर्वक निश्चय किए हुए मार्ग को आक्रमण करते हैं। यहां कितना सौंदर्य ओत प्रोत हो रहा है और अनन्त आकाश किस प्रकार सुख से परिपूर्ण है। मनुष्य मात्र निश्चय किए हुए मार्ग से भ्रष्ट होने के कारण दुःख भोगता है। अधर्म के कारण मनुष्य के सुख के मार्ग में झाँखर—कांटे—लगे हुए हैं। उस खांडव वन को जला कर भस्म करने के लिए कुरुक्षेत्र में संग्राम रूपी अग्नि दहक रही है। पृथ्वी पर धर्म-साम्राज्य की स्थापना करने के लिए, मनुष्य के सुख का मार्ग साफ़ करने के लिए, सुभद्रा का पति और पुत्र इस अग्नि में आत्म समर्पण करने को तय्यार हैं। तो फिर कहो, इस पृथ्वी पर मुझ सरीखी भाग्यवान् और पुण्यवान् दूसरी स्त्री कौन है?"

शैलजा ने प्रसन्न होकर कहाः—"हे पितृगण और देवगण! तुम जहां हो वहां इस पुण्यवान् स्त्री के आत्म-विसर्जन-मनुष्य के उद्धार के व्रत की ओर देखो। इस माता के पुण्य का और मेरे स्नेह का कवच करके मेरे वत्स का रक्षण करो!"

वे दोनों स्तब्ध होकर आकाश की ओर देखने लगीं। थोड़ी देर के बाद शैलजा जाने को तय्यार हुई। सुभद्रा ने उसे बहुत कुछ आग्रह के साथ घर में बुलाया। शैलजा ने कहाः—"आर्य लोगों की शक्ति सुभद्रा है और अनार्य लोगों की शक्ति शैलजा। जिस दिन गंगा और यमुना के संगम के समान आर्य और अनार्य इनकी शक्ति एक होगी और धर्म-साम्राज्य की स्थापना होगी उस समय मैं तुम्हारी सेवा में

हाजिर हूंगी। यह होने तक जिस उदात्त धर्म को मैंने सीखा है उसी का साधन करूंगी। तब तक गृह सुभद्रा का और वन शैलजा का कार्यक्षेत्र रहेगा।

धीरे धीरे कृष्ण उनके सामने आ खड़े हुए। शैलजा और सुभद्रा दोनों ने कृष्ण के चरणस्पर्श किए। ऐश्वर्ययुक्त कृष्ण की मूर्त्ति आकाश की ओर देखती उनके सामने कुछ देर तक खड़ी रही।

हे देव! तुम इसी प्रकार मेरे सम्मुख खड़े रहो जिस से मैं तुम्हें देखा करूं। आर्य और अनार्य इन दोनों की शक्ति का संघर्षण होकर अन्त में तुम्हारे चरणों में उसका संगम हो। ऐसी यदि भारत की नियति हो, तुम्हारी इच्छा हो, तो हे देव! तुम इसी प्रकार खड़े रहो। मुझे आँख भर के अपना रूप देखने दो।

छठवाँ अध्याय

महाभारत

धेरी रात है । पृथ्वी से लेकर आकाश तक अंधेरा ही अंधेरा छाया है। एक शिविर में एक चिराग़ टिमटिमा रहा है। वहां एक स्त्री बैठी हुई है। उसकी आंखें रोते रोते सूज गई हैं। गालों पर सूखे हुए आंसुओं के चिन्ह दिखाई पड़ते हैं। वह अपना बायां हाथ गाल पर रक्खे बैठी है । उस के केश धूल के कारण मलिन हो रहे हैं और लटें छूट रही हैं। वह बैठी बैठी मन ही मन कुछ सोच रहा है। उसकी गोद में मूर्छित हुई एक तरुण स्त्री पड़ी है । दुःख के कारण उस के सिर के आधे बाल सफ़ेद हो गए हैं। उसकी आंखें भीतर बैठ गई हैं और उसका शरीर सूख गया है। बहुत देर तक वह तरुण स्त्री यों ही उसकी गोद में पड़ी रही पश्चात् उसने अपनी आंखें खोलीं। पागल मनुष्य के समान उसने उस दूसरी स्त्री की ओर देख कर उससे पूछा कि, "मैं कौन हूं ?"

"बेटा तुम उत्तरा।"

"उत्तरा कौन ?"

"उत्तरा विराट् राजा की कन्या।"

"उत्तरा! मैं उत्तरा? विराट् राजा की कन्या?" विस्मयपूर्वक उसने यह कहा। पास ही रक्खे हुए आयने की ओर देखकर उसने फिर पूछाः—"यह यहां पर कौन बैठा है?"

उसके पागलों के समान किए हुए प्रश्नों को सुन कर उस दूसरी स्त्री का हृदय भर आया। उसने कहाः—"बेटा! कोई नहीं। उस आयने में अपना ही प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है।"

"उत्तरा! मैं उत्तरा? यह उत्तरा का प्रतिबिम्ब? उत्तरा के बाल इतने सफ़ेद? यह मुंह, यह आंखें उत्तरा की?"

उस तापसी स्त्री के आँखों में आंसू भर आए। छः दिन के दारुण शोक से उत्तरा के बाल सफ़ेद हो गये थे।

"तुम कौन?"

"मैं वनबाला शैलजा।"

"हिं, हिं, तू स्वप्न की देवी है। मैंने स्वप्न में देखा कि मैं पूर्णचन्द्र के वक्षस्थल पर से अंधकारमय पाताल के कठिन पत्थरों पर जा पड़ी हूं। मेरा शरीर चूर चूर हो गया है। हृदय छिन्न भिन्न हो गया है। वहां पर नारायण की करुणामय मूर्ति आविर्भूत हुई। पाताल निर्मल तेज से प्रकाशित हो गया। उन्हों ने मुझे संजीवनी सुधा देकर एक देवी के गोद में बैठाल दिया। क्या तू उसी स्वप्न की देवी है? यह पुण्य-भूमि कौन सी है? यह स्वप्न-राज्य है अथवा देव-राज्य?"

शैलजा ने कहाः—"बेटा! तुम मेरे शिविर में हो।"

"शिविर में? कहां के शिविर में?"

"कुरुक्षेत्र के शिविर में।"

यह सुन कर उत्तरा क्षण भर टकटकी लगाये देखता रही। कृष्ण पक्ष के अंधकार में जिस तरह क्षीण हुए चन्द्रमा की कोर दिखाई देती है उसी प्रकार उत्तरा के मन में धीरे धीरे पीछे की बातों का स्मरण होने लगा। पितृगृह, नाट्यालय, बृहन्नला, उत्तर-गोग्रहण समय की जय, विवाह, छः महीने तक भोग किया हुआ सुख स्वप्न, कुरुक्षेत्र का महारण, वहां का शिविर, चक्रव्यूह, मृत पति के दर्शन और पश्चात् अंधकार—इन सब बातों का उसे फिर इकबारगी स्मरण हो आया। उसका शोकानल पुनः प्रदीप्त होगया। परन्तु शोक के तीव्र संताप के कारण उसकी आंखों का पानी—आँसू बिलकुल सूख गया था। उसने शैलजा के वक्षस्थल पर अपना मुख रख दिया। सूखे हुए कमल के पत्ता पर जिस प्रकार पानी की बूंदे पड़ जाती हैं उसी प्रकार शैलजा की आँखों से दो गरम गरम आंसुओं की बूंदें उसके मुख पर जा पड़ीं। उत्तरा ने पूछाः— "तुम रोती क्यों हो? अभिमन्यु की वनमाता क्या तुम्हीं हो?"

शैलजा ने कहाः—"हाँ, मैं ही उसकी वनमाता।"

"कल रात को उन्होंने तुम्हारी बाबत मुझसे बातें की थीं। उनकी इच्छा थी कि युद्ध समाप्त होने पश्चात् मुझे साथ लेकर वन में तुम्हारे स्नेहमय निवासस्थान में जाकर तुम्हारे दर्शन करें। कल हम दोनों कल्पना का मनोराज्य कर रहे थे परन्तु मुझे क्या मालूम था कि मुझ हतभागिनी को इस दशा में तुम्हारी ही गोद में स्थान मिलेगा।"

शैलजा ने शोक से दुःखित होकर कहाः—"अभिमन्यु ने अपनी प्रतिमूर्ति तुम्हारे पुण्य गर्भ में स्थापन करदी है। तुम बालक को हृदय में लगाकर मेरे आश्रम पर वन में आओगी। उस छोटे से बालक—अभिमन्यु—के वन में खेल तमाशे हम

तुम दोनों देखेंगे। गृहभूमि और वनभूमि दोनों को प्रेमबंधन से बाँध कर स्वधर्म राज्य की स्थापना करेंगे। तुम्हारे बालक को सिंहासन पर बिठाऊँगी और तुम मेरी राज्य-लक्ष्मी होगी। बालक का सुख देख कर, प्रजा को सुखी जानकर तुम्हारा दुःख दूर होगा।"

उत्तरा ने एक लम्बी सांस ली और कहाः—"सूर्य अस्त होने पश्चात् क्या दिन बाक़ी रहेगा। चन्द्रमा के चले जाने पर क्या चांदनी रह सकती है? वृक्ष के भस्म होने पर क्या उसकी छाया बनी रह सकती है? जलाशय के सूख जाने पर क्या नलिनी वहाँ बनी रह सकती है? कुरुक्षत्र रूपी बादल में उत्तरा का आश्रय भूत वृक्ष उखड़ गया है-फिर इस लता की पीछे क्या दशा होगी? मुझे इस समय तुम इतना ही आशीर्वाद दो कि उसका फल माता सुभद्रा, सुलोचना और शैलजा इनको स्वाधीन करके मैं अपने वृक्ष के पाद-मूल के समीप अपना प्राण समर्पण करूं।"

कुछ देर तक स्तब्ध रह कर उत्तरा ने फिर कहा:-"इस कुरुक्षेत्र में मुझ सरीखी कितनी ही उत्तराओं का भाग्य फूटेगा यह कहा नहीं जा सकता।"

"युद्ध समाप्त होगया है।"

"समाप्त!" उत्तरा आश्चर्य पूर्वक पूंछने लगी।

शैलजा ने कहाः-"हां, समाप्त हो गया। जगत् की महा ज्वाला शान्त होगई। क्षत्रियवन को भस्म करके अधर्म रूपी अग्नि ठण्ढी हो गई! अर्जुन का वीर्यानल करुणाजल से सिंचित होने के कारण कुछ काम नहीं देता था; परन्तु कौरवों के अभिमन्यु का वध करने पश्चात् उन्होंने ज्वालामुखी पर्वत के समान अपना उग्र रूप धारण किया द्रोणाचार्य मारे गए।

उनके दो दिन बाद कर्ण का भी अन्त हुआ। कर्ण ने युद्ध नहीं किया परन्तु शिशुहत्या के पाप के कारण उन्होंने अपना प्राण विसर्जन किया। एक ही दिन के युद्ध में शल्य और दुर्योधन मारे गए। भारत-भूमि को श्मशान करके कल के दिन अधर्म का दिया गुल हो गया। कौरवों में से कृप, कृतवर्मा और द्रोण पुत्र—इतने ही बाक़ी बचे।"

"पाण्डव और नारायण ?"

"सब प्रसन्न हैं। अन्त को धर्म की ही जय हुई।"

"माता सुभद्रा ?"

"वे तो साक्षात् देवी हैं। उनका अमंगल कैसे होगा ?"

"और सुलोचना ?"

शैलजा चुप हो रही। उत्तरा ने शोक से व्याकुल होकर फिर पूछाः—"माता क्या तू भी उत्तरा को छोड़ गई ? ख़ैर, मेरे पिता और भ्राता तो कुशलपूर्वक हैं न ?"

शैलजा फिर ज्यों की त्यों चुप चाप बैठी रही। उत्तरा की आँखों से आँसुओं की एक भी बूंद नहीं निकली, न उसके मुख का कुछ रंग बिगड़ा। भयंकर विष यदि एक बार खाकर पचा लिया तो फिर छोटे मोटे विषों की क्या गणना ? फिर उत्तरा ने पूछाः—"तो क्या उत्तरा के मायके के सब लोग नष्ट हो गए ? क्या हमारे बावा दादा सब मुझ अभागिनी को अकेला छोड़ कर चले गए ? सब लोग चले गए परन्तु मेरा हृदय विदीर्ण न हुआ ? छः दिन तक मैं मूर्छित—बेहोश—पड़ी रही, परन्तु तो भी मेरे प्राण न निकले ?"

शैलजा ने कहाः—"वत्स ! तुम्हारे जीने की किसको आशा थी ? परन्तु कृष्ण ने योगस्थ होकर तुम्हें पुनर्जन्म दिया।"

"दयामय कृष्ण ने इस अनाथ,—सूखी हुई लता को,-क्यों बचाया? अग्नि में क्यों न झोंक दिया?"

"वत्स! तू कुरुकुल की लक्ष्मी है। कुरुकुल का आधार होने वाला एकमात्र अंकुर तेरे गर्भ में है। तेरा पुत्र मनुष्य मात्र का आशावृक्ष और धर्मराज्य का आधार-स्तम्भ होगा। और तू स्वयं धर्मराज्य-लक्ष्मी होगी!"

"क्या मेरे पाँचों देवर कुशलपूर्वक हैं?"

शैलजा ने उत्तर दिया:—"पाण्डव, सात्यकी और कृष्ण इनके सिवाय और कोई नहीं बचा। द्रोण पुत्र ने रात्रि समय शिविर में प्रवेश करके सोते हुए पाँचों बालकों का वध किया। अधर्म का अन्तिम अंक कल रात्रि को पूर्ण हुआ। अब खेल समाप्त हो गया। इस अधर्म राक्षसी से लोगों की रक्षा हो, इस कारण देवता के समान तुम्हें पुत्र दिया है। उत्तरा! अब तू पति-प्रेम को भुला कर पुत्र-प्रेम से अपने हृदय को प्रसन्न कर!" उत्तरा विस्मित होकर कुछ देर तक चुप रही। कुछ देर बाद वह धीरे धीरे उठ बैठी और कहने लगी:— "चलो, अच्छा, अब मैं जाती हूं।"

"कहां?"

"उत्तरा को अब कहीं दूसरा स्थान नहीं—वही स्थान, पति की चिता!"

शैलाजा काँपने लगी। आँखों में आँसू भर कर उसने कहा:—"पति की चिता पर प्राण समर्पण करने की अपेक्षा क्या स्त्री के लिए दूसरा श्रेष्ठ धर्म नहीं है?"

"है" यह स्थिर कंठ से उत्तर देकर उत्तरा चुप हो रही। "पति-पद की भस्म सिर में लगा कर अपने उस व्रत का पालन करना चाहिए।"

वे दोनों और कुछ न बोलीं । चुप चाप शिविर से बाहर चली गईं । वहाँ उनको भयंकर दृश्य दिखाई पड़ा। कुरुक्षेत्र में अगणित चितायें जलरही हैं । नदी के किनारे जलने वाली चिताओं का नदी के जल में प्रतिबिम्ब पड़ने से पानी में असंख्य चितायें जलती हुई दिखाई पड़ती थीं । एक भयंकर महा-चिता में अनाथ सैनिकों का दहन होता था । महा नरमेध यज्ञ समाप्त हुआ । जैसी जैसी रात्रि कम होती गई वैसी वैसी ही चिताओं की अग्नि भी शान्त होती गई । इस भयानक श्मशान के धुएँ से आकाश आच्छादित हो गया । एक भी नक्षत्र आकाश में दिखाई नहीं पड़ता था । न मालूम सारे नक्षत्र, शोक से व्याकुल होकर, पृथ्वी पर गिर पड़े, अथवा कहीं ग़ायब हो गए । सिर के बाल खुले हुए, शोक से व्याकुल, वीर नारी मृतपति, पुत्र, पिता अथवा बन्धुओं को वहां ढूंढ़ रही थीं । शकुनी और शृगाल रात्रि के समय उस श्मशान में इधर उधर धीरे धीरे घूमते और अपने कर्कश शब्द द्वारा रात्रि की शान्ति का नाश करते थे । उस समय उत्तरा का हृदय काँप उठा । शोक से व्याकुल होकर वह शैलजा के गले में लिपट गई, और उसके वक्षस्थल पर मुख रख कर कहाः—"जिस प्रकार ये चितायें धीरे धीरे जल कर शान्त हो रही हैं क्या इसी प्रकार मेरे हृदय में जलने वाली चिता भी शान्त हो जायगी ? क्या इसी प्रकार कभी मेरे शोक की रात्रि भी समाप्त होगी ?"

शैलजा ने कहाः—"देखो, भारत माता के वक्षस्थल पर, असंख्य चितायें जल रही हैं । इस चितानल में, अधर्म जल कर भस्म हुआ जाता है और नवीन धर्म की बाल किरणों का प्रकाश धीरे धीरे हो रहा है । जगत् के प्राणियों, तुम्हारे

और मेरे प्राणो को आनन्दित करने के लिए कृष्ण नाम की ध्वनि हुआ ही चाहती है।"

शैलजा उत्तरा को धीरे धीरे पति की चिता के समीप लेगई। यह चिता हिरण्यवती नदी के किनारे एक अशोक वृक्ष के जड़ के पास थी। उत्तरा ने भक्तिपूर्वक उस चिता को प्रणाम किया। प्रिय-पुत्र के साथ पुण्यवती सुलोचना को एक ही चिता पर जलाया गया था। चिता क़रीब क़रीब बुझ चुकी थी। अशोक वृक्ष की जड़ के पास खड़े होकर कृष्ण ने उत्तरा की शोकाकुल मूर्ति को देखा। उसको देख कर कृष्ण का हृदय विदीर्ण हो गया। उत्तरा ने कृष्ण को नहीं देखा, उसने व्याकुल होकर कहा:—"हे कमलनयन कृष्ण! तुम कहाँ हो? मैं शोकसागर में डूबी जाती हूं; तुम अपने पाँव की नौका मुझे दो। जिसकी आँखें तुम्हारी आँखों के समान शोभायमान थीं, जिसका रूप तुम्हारे रूप के समान माधुर्यमय था, जिसका सुन्दर मनोहर मुख सुभद्रा माता की आकृति के समान था, जिसमें तुम्हारा देवत्व और पार्थव का शौर्य वर्तमान था, जो उत्तरा का स्वप्न स्वर्ग था; वह क्या इस प्रकार भस्म हो जाय? उसका चिह्न भी न रहे—क्या ऐसा हो सकता है? जो अर्जुन और सुभद्रा का प्राणप्रिय पुत्र और कृष्ण का प्रिय शिष्य उसके लिए मृत्यु? प्राणेश्वर! सिर पर सुन्दर मुकुट धारण करके तुम चन्द्र लोक में कितनी शोभा देते होगे? तुम्हारा वीर वेष कितना सुन्दर है! देखो देखो, अप्सरा तुम्हारे ऊपर सुगंधित फूलों की वर्षा कर रहीं हैं! कोमल और मधुर संगीत-ध्वनि सुनाई पड़ती है। नाथ! क्या तुम अब फिर कभी उत्तरा की ओर आँख भर कर देखोगे? क्या तुम उसे पहचान भी

सकोगे ? उत्तरा की दशा तुम्हारे दर्शनों बिना कैसी हो रही है क्या इसकी तुम्हें कुछ ख़बर है ? एक बार उसे अपने हृदय से लगा लो और एक शब्द बोल कर उसे सुखी करो। तुम ने पृथ्वी पर उत्तरा के साथ छः महीने रह कर जो उसे स्वर्ग के समान सुख पहुंचाया और अब उसका हृदय विदीर्ण करके इस प्रकार चलते हुए ? तुम अपने प्रेम की कली इस लता में संचारित करके किस प्रकार चले गए ? ख़ैर ! छः महीने के लिए मुझे क्षमा करो। छः महीने बाद उस फल को प्रसव कर, पृथ्वी पर तुम्हारा प्रतिबिम्ब स्थापित करके, यह उत्तरा, जिसे यह छः महीने छः युग के समान व्यतीत होंगे, पश्चात् तुम्हारे समीप आयगी। पति की चिता पर मृत प्राण समर्पण करना, यह मृत्यु नहीं है। नाथ ! मुझे आशीर्वाद दो कि, यह मृत्यु-व्रत मैं अच्छी तरह पूरा कर सकूँ !"

शैलजा ने चिता-भस्म अपने और उत्तरा दोनों के मांथे पर लगा कर कहाः—"वत्स ! वन-माता का व्रत मुझ से पूर्ण हो ऐसा मुझे आशीर्वाद दो।" इसके बाद दोनों ने उस चिता के चारों ओर प्रदक्षिणा की और अपना कलेजा पत्थर का करके शिविर को वापस गईं। कृष्ण अब तक पाषाणमूर्ति के समान उसी अशोक वृक्ष के नीचे ज्यों के त्यों खड़े रहे। तब तक अर्जुन सुभद्रा को लेकर चिता के पास आए। उस समय अर्जुन शोक से व्याकुल थे। परन्तु सुभद्रा के मुख पर से शान्ति की छाया झलकती थी। शोक का अपार सागर उस समय बिलकुल स्थिर था। धनंजय ने एक लम्बी सांस ली और कहाः—"इस प्रकार हमारा हृदय भस्म हुआ !"

सुभद्रा ने शान्ति के साथ उत्तर दियाः—"प्राणनाथ ! ऐसा मत कहो ! जगत् के प्राणों का कल्याण होने के लिए,

कृष्ण नाम का आप के द्वारा प्रचार होगा। सुलोचना का मातृप्रेम अभिमन्यु का आत्मज्ञान, यह नवीन धर्म-राज्य की नीव है। कृष्णनाम उसका मुकुट है। तुम्हारा वीर-व्रत समाप्त हुआ। अब श्रेष्ठतर धर्म-व्रत को स्वीकार करो, और पुत्र-भस्म को हृदय से लगा कर कर्मक्षेत्र में अग्रसर हो। जिस समय इस नवीन धर्मामृत से पृथ्वी सिंचित होगी उस समय हम तुम अभिमन्यु के योग्य माता पिता कहलाए जा सकेंगे। उस समय संसार में दुःख नहीं रहेगा। चारों ओर सुख और शान्ति का सागर दिखाई पड़ेगा। विश्वकंठ से निकलने वाले कृष्ण नाम की ध्वनि सुन सुन कर हम तुम दोनों एक ही चिता पर निर्वाण पद को प्राप्त होंगे।"

पुत्र के चिता की भस्म हृदय में लगा कर योगी और योगिनी के भेष में दोनों शिविराभिमुख चलते हुए। अब कृष्ण ने उस वृक्ष के नीचे से चिता के पास आकर अपने हृदय में चिता की भस्म लगाई और आकाश की ओर देख कर कहने लगेः—"मनुष्य के उष्ण रक्त के सिवाय मनुष्य के पाप और मनुष्य के शोक के बिना मनुष्य के दुःखों का कभी नाश न होगा। यदि मनुष्य की मुक्ति का मार्ग रक्त के सागर से है तो हे देव! एक घाव से एक निमिष काल में कृष्ण के रक्त से पृथ्वी का स्नान क्यों न कराया? एक श्मशान प्रज्वलित करके कृष्ण के हृदय को वहां क्यों न समर्पण किया? आज अठारह दिन तक जो रक्त का प्रवाह बहा, उसमें का प्रत्येक बिन्दु कृष्ण के तप्त रक्त से निकला हुआ था। इन हर एक चिताओं में कृष्ण का प्राण भस्म हुआ है! प्रत्येक अनाथ स्त्री का हाहाकार शब्द, गांधारी का शोक, उत्तरा की शोकमय मूर्ति, अर्जुन का दुःखवेग,

सुभद्रा का वैराग्य इत्यादि बातोंने मेरे हृदय पर वज्रपात किया है। राज-सूय-यज्ञ द्वारा निर्माण किया हुआ धर्मराज्य, बालू की भीत के समान जब नष्ट होने लगा तभी मैंने यह समझ लिया था कि, रक्तस्राव हुए विना, अग्नि में परीक्षा हुए बिना, पृथ्वी पर धर्म राज्य की स्थापना नहीं होसकती। नारायण! तुम्हारी यह इच्छा जान कर, मैंने अपना हृदय विदीर्ण करके अठारह दिन तक पृथ्वी पर रक्त की नदी बहाई! इतना करने पर भी प्राणों से भी अधिक प्रिय कुमार का आहुति देनी पड़ी! निष्पाप मानव पुत्र को अपने प्राणों की बलि देने के सिवाय क्या मानव जाति का उद्धार नहीं हो सकता? यदि आप की यही इच्छा है, तो मैं शोक को परित्याग करता हूं। आप की इच्छानुसार सब कार्य्य होना चाहिए। अब आप पृथ्वी पर धर्म राज्य की स्थापना कीजिए।" कुमार की चिता पुनः प्रज्वलित हो उठी। अग्नि की शिखा तमोमण्डल को स्पर्श करने लगी। चितानल समरक्षेत्र में व्याप्त हो गई! उस अग्नि से त्रिभुवन को प्रकाशित करने वाली महाभारत की मूर्ति राज-राजेश्वरी माता दिखाई पड़ी। वेदी के आरम्भ में आर्य और अनार्यों का सम्मेलन करने और नवीन धर्म की स्थापना करने के लिए वह विशाल मूर्ति ध्यानमग्न दिखाई पड़ी। वेदी के वक्षस्थल पर निष्काम की महामूर्ति विराजमान थी। उस के ऊपर प्रतिभान्वित आनन्दमय जननी शोभा दे रही थी। उस के शिर पर अर्धेन्दु किरीट रक्खा हुआ था। चारों हाथों में पाशांकुश, धनुष और बाण था। तीनों नेत्रों में त्रिकाल का ज्ञान था। बालसूर्य की किरणों के प्रकाश के समान धर्म सम्राज्ञी का मुख प्रकाशमान था। उसकी आँखों से आनन्दाश्रु बह रहे थे। वह

कृष्ण नाम का जाप कर रही थी। कृष्ण का जीवनवृत पूर्ण हुआ। उद्वेगित मन से "मां मां" कह कर कुमार की चिता के समीप वे मूर्छित होकर गिर पड़े। प्रातःकाल के प्रकाश से पूर्व की ओर आकाश सुशोभित हुआ। अनन्त मंगल बाजे बजने लगे। कुरुक्षेत्र में आनन्द मंगल गीतों की ध्वनि उच्च स्वर से हो कर धर्मराज्य की घोषणा हुई। सुभद्रा और अर्जुन शैलजा और द्वैपायन ये धीरे धीरे वहां पहुंचे। कृष्ण उठ कर खड़े होगए। कुमार की चिता के सामने, पूर्व गगनाभिमुख हो कर योग ध्यान में मग्न हुए। उन के पास एक किनारे धनंजय खड़े थे। और दोनों के बीच में सुभद्रा देवी। प्रेमानन्द में मग्न होकर, अपनी देह की सुध बुध भुला कर, व्यास ने कहाः—"हे देवगण! ऋषिगण! एक बार यहां आकर इस पार्थिव त्रिमूर्ति के दर्शन करो। ज्ञानदेव कृष्ण, धनंजय बलदेव, और उनके मध्य में भक्ति देवी सुभद्रा शोभायमान हैं। उनके सामने चिता रूपी आत्म-विसर्जन हो रहा है। ज्ञान, बल, आत्मविसर्जन ये भक्ति के निष्काम सूत्र द्वारा एकत्रित हुए हैं। यही मानव जाति के लिए मोक्ष-धाम है। यही द्वापर का अतवार है। यह महातीर्थ, आँख भर कर आज मैंने देखा। मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ। नारायण! आप महाभारत का गीत गाने की मुझे शक्ति दें! जिससे मनुष्य उस गीत को सुन कर और कृष्ण नामामृत का पान करके, मुक्ति लाभ करें, और जिसको पढ़ कर, पृथ्वी स्वर्गधाम बने।"

शैलजा ने गुरुदेव की पदरज अपने सिर पर धारण की और कहाः—"हे गुरुदेव! तुम्हारी कृपा से, हे पुत्र! तुम्हारे स्नेह से, इस तेरी अनाथ माता का आज जन्म सफल हुआ!

हे नारायण! आर्य और अनार्य दोनों के रक्षक, पतित अनार्यों को अपने पद कमल में शरण दो! तुम्हारे धर्म राज्य में उन को भी स्थान प्राप्त हो! हे भगवन्! भारतवासियों को ज्ञान, भक्ति, बल और आत्मविसर्जन करने की शिक्षा दो! जिसके कारण वे पशु से मनुष्य कहलाने योग्य बनें।"

सातवाँ अध्याय

छाया

वसन्त ऋतु, शुक्ल चतुर्दशी का दिन, दोपहर का समय था। वह सुन्दर दिन, सृष्टिस्वरूप सोलह वर्ष की तरुणी के समान मनोहर दिखाई पड़ता था! समुद्र, यह आनन्द का चञ्चल स्वरूप, और नील वर्ण आकाश का स्थिर स्वरूप, महिमामय नील वर्ण आकाश के साथ, महिमामय नीले समुद्र का सम्मेलन होकर यह मालूम होता था कि मानो अनन्त, अनन्त को आलिंगन दे रहा है। समुद्र आनन्द पूर्वक गीत गाता हुआ किनारे का वारम्वार चुम्बन लेता है और उसके ऊपर शुभ्र पुष्पों का हार फेंकता है। उसकी लहरों पर से यही बात प्रतीत होती थी। उस समय वहां समुद्र के किनारे यादवों की सेना का पड़ाव पड़ा हुआ था।

वहीं थोड़ी दूर पर कृष्ण का शिविर, देवताओं के पवित्र मन्दिर के समान शोभायमान था, शिविर के ऊपर पीली सुदर्शन चक्र की ध्वजा फहरा रही थी। तरंगरूप अनन्त हाथों से मानो सागर शिविर को बार बार प्रणाम कर रहा था। सुवर्ण-खचित सुन्दर चौकी पर, तकिया लगाए आनन्द रूपिणी रुक्मिणी बैठी हुई थीं। पास ही

सत्यभामा विराजमान थीं। उनके मुख पर चिन्ता की छाया दिखाई पड़ती थी। उनके केश छूटे हुए पीठ के ऊपर पलंग पर पड़े थे। संध्या-समय के आकाश के समान उनके नेत्र स्थिर थे। दोनों ही चुप चाप समुद्र को ओर देख रही थीं। रुक्मिणी की दृष्टि चांदनी के समान शान्त और सत्य-भामा की दृष्टि सायंकाल के समान गंभीर थी। सृष्टि की शोभा से मोहित होकर रुक्मिणी ने कहाः-"बहन! कैसा सुहावना दिन है! दुपहरी बीत गई है। इस कारण शान्त समुद्र का हृदय उज्ज्वल नील मणिमय हो रहा है। समुद्र मानों पुण्य का समूह है। समुद्र के बीच में, इस वसन्त ऋतु में, सायंकाल के सूर्य की किरणें पड़ कर जिस प्रकार देखने वालों के मन को आनन्दित करती हैं उसी प्रकार कृष्ण नाम का पवित्र प्रकाश जिनके हृदय पर पड़ता है वे धन्य है! बहन! आनन्दमय और पवित्र समुद्र की ओर देखो!"

सत्यभामा ने कुछ भी उत्तर न दिया; चुप चाप यों ही बैठी रहीं।

रुक्मिणी ने कुछ देर बाद फिर कहाः—"बहन! अभी अनन्त सागर के हृदय पर, नारायण विराजमान थे। वह अपूर्व दृश्य तुम्हारे सामने है। इस महासागर के ऊपर, सायंकाल के सूर्य की किरणें तेजोमय नारायण के समान शोभा दे रही हैं। अहा! बहन, नारायण आपके पति, आप का कठिन हृदय पत्थर के समान, जब इस सागर के समान,-निर्मल, शीतल, अनन्त, अक्षय, और जहाँ आनन्द की लहरें सदैव उठा करती हैं ऐसा प्रेम का सागर बन जाता है—तब इस समुद्र के पृष्ठ भाग पर खेलने वाले सूर्य की किरणों के समान नारायण आपके हृदय में विराजमान होते हैं।"

रुक्मिणी ने आनन्द में मग्न होकर सत्यभामा के गले में हाथ डाल दिया। उनकी आँखों में दो निर्मल उज्ज्वल मोती, दो अश्रुविन्दु, रमणी के प्रेम समुद्र के रत्न-दिखाई पड़े। सत्यभामा पहले के समान चुप चाप वैठी थीं। उनका अरुणोज्ज्वल मुख, चन्द्र-मेघाच्छादित हुआ देख कर रुक्मिणी ने कहाः—"बहन! यह क्या! तुम आज इतनी उदास क्यों हो? सब लोग आज आनन्द में मग्न हैं। यादवों की सेना आज उत्सव में निमग्न होकर उन्मत्त हो रही है। परन्तु तुम्हारी यह दशा क्यों?"

सत्यभामा ने गम्भीर भाव से उत्तर दियाः—"बहन! ठीक है। एक प्रकार के अज्ञान दुःख से मेरा मन दुःखी हो रहा है। मेरा हृदय निरानन्दमय समुद्र के गर्भ में प्रवेश करता जाता है। यह आज नई वात नहीं है। बहुत दिनों की वात है। मेरे हृदय पर एक प्रकार की विषादमय छाया पड़ती जाती है!"

रुक्मिणी ने पूंछाः—"बहन! ऐसी कौनसी छाया है, और वह तुम्हारे हृदय पर क्यों पड़ती है? तुम इतना दुःखी क्यों होती हो? तुम राजकन्या हो। तुम प्रत्यक्ष विष्णु के अवतार नर रूपी नारायण की पत्नी हो। तुम्हारा रूप, गुण और प्रेम जगत् में किसी दूसरे को दुर्लभ है। यह होने पर भी तुम्हारे हृदय पर विषाद की छाया! यह असम्भवनीय वात कैसी है?"

सत्यभामा ने कहाः—"बहन! यादवों के राज्य में कितने विलक्षण और अशुभ कार्य नित्य होते हैं, उनको क्या तुम ने नहीं सुना? क्या तुम से यह किसी ने नहीं कहा? परन्तु तुम से कहे कौन! तुम्हे दुःख पहुंचे, ऐसी वात तुम से कौन कहे? तुम्हारा अन्तःकरण सरल और कोमल है। तुम्हें

अशुभ समाचार सुनावे ऐसा किसका कठोर हृदय है ? फूल के हार पर पत्थर कौन फेंकेगा ? तुम्हारी कोमलता, पवित्रता और प्रेमलता सब दिव्य है ! मुझे तो यह आश्चर्य मालूम होता है कि तुम इस जड़ मृत्युलोक में आईं कैसे ! तुमने देवी का रूप धारण करके इस लोक में अवतार लिया है। परन्तु यहां की मृत्तिका का और तुम्हारा बिलकुल सम्बन्ध नहीं है ! यहां की आबोहवा तुम्हारे योग्य नहीं है !"

रुक्मिणी ने कहा:—"बहन ! इस संसार में मैं बिलकुल निराश्रय और दुर्बल हूं। क्योंकि मुझे व्यवहारिक ज्ञान बिलकुल नही है। तुम और सुभद्रा मेरे लिए सहारा हो। अगर सदा-सर्वदा तुम दोनों मेरे दोनो ओर न रहतीं तो मैं इतने दिनों तक निराधार बेलि के समान सूख जाती। अमंगल वार्ता क्या है, यह मुझे अब तक ज्ञात नहीं। सब बाल बच्चे अच्छी तरह हैं न ? आश्रम में सुभद्रा और नारायण कुशल-पूर्वक हैं ?"

सत्यभामा ने कहा:—"सब लोग कुशल-पूर्वक हैं। परन्तु आज बहुत दिनों से अशुभ चिह्न दिखाई पड़ते हैं। पानी बरसना बन्द हो गया है। बड़ी बड़ी नदियाँ बिलकुल सूख गईं हैं ! भयंकर हवा चलती है। सांझ सबेरे आकाश में धूल छा जाती है। अग्नि की वर्षा करने वाला उल्कापात बारम्बार यदु-राज्य में होता है। सूर्यमण्डल पहले के समान उज्ज्वल नहीं दिखाई पड़ता। आकाश में निराली निराली आकृति दिखाई पड़ती हैं। बारम्बार भूकम्प होता है। पर्वतों के उदर में भयङ्कर घरघराहट का शब्द होता है जिस को सुन कर शरीर पर रोमांच हो आते हैं। चूहों द्वारा अनिवार्य उपद्रव होते हैं। इधर उधर मरे हुए चूहे दिखाई पड़ते हैं।

रात दिन पशु और पक्षी विकलस्वर से रुदन करते हैं।"

'बहन ! यह सब मैंने सुना और देखा है। परन्तु इस में तुम्हारे समान मेरे मन पर कोई भी अमङ्गल छाया नहीं पड़ी-मेरा हृदय दुःख से अन्धकारमय नहीं हुआ। जिसकी आज्ञा बिना मङ्गल अथवा अमंगल कुछ भी नहीं होता, जिसने यह अनन्त विश्व निर्माण किया, वही अकेला मंगलमय है। दयामय और प्रेममय ईश्वर वही है। हम सरीखे क्षुद्र प्राणियों को सुख दुःख, शुभाशुभ आदि के यावत वाद विवाद करना मानों पतंग को विश्व का ज्ञान प्राप्त करने के समान है। सृष्टि को जिस भाव से देखें वैसी ही वह हमको दिखाई पड़ेगी। मंगल भाव से देखा जाय तो सर्वत्र मंगल ही मंगल दिखई पड़ेगा। अमंगल भाव से देखें तो अमंगल ही दिखाई पड़ेगा। संसार-यह केवल सुखमय, शोभामय और मंगलमय है। और हमें जो सुख दुःख शुभाशुभ भासित होता है; यह सब मनका ही परिणाम है। बहन ! इन सब शंकाओं को छोड़ दो। पानी नहीं बरसा तो इस संकट को भुगतना चाहिए। पुनः पानी बरसेगा और फिर यादवों के राज्य में धन धान्य की वृद्धि होगी। चारों ओर सुख ही सुख दिखाई पड़ने लगेगा।"

सत्यभामा ने कहाः—"मैं ने ऐसा सुना है कि भारतीय युद्ध के पूर्व भी ऐसे ही अशुभ चिह्न दिखाई पड़ते थे। और आगे उन का भयंकर परिणाम निकला। यदुकुल के भाग्य में क्या बदा है यह समझ नहीं पड़ता ?"

"भारतीय युद्ध का परिणाम बहुत ही भयंकर हुआ, यह कौन कहता है ? भारतवर्ष में सर्वत्र निर्मल आनन्द, शान्ति, धर्म का अभ्युदय और हरिनाम का स्मरण; यह भारतीय युद्ध का परिणाम है ! इस युद्ध में अधर्म के बड़े बड़े वृक्ष अपने

आप पापानल में जल कर भस्म हो गए। किसान लोग पहले खेत की घास बीन डालते हैं, पश्चात् उसमें बीजारोपण करते हैं। इसी प्रकार अब भारतवर्ष की दशा हुई है।"

सत्यभामा ने कहाः—"बहन! मैंने जो आँखों से—स्वप्नावस्था में नहीं, जाग्रतावस्था में—देखा है, यदि वह तुम देखतीं तो तुम्हारे हृदय में भी भय का संचार ज़रूर हुआ होता। कभी कभी रात को मेरी शय्या के नज़दीक केश खोले खड़ी हुई एक उन्मादिनी स्त्री मैंने अपनी आँखों से कई बार देखी है। उस की आँखें अग्नि के समान लाल लाल थीं। हाथ में धनुष और पीठ पर तरकाश डाले हुए थी! उसका स्वरूप बड़ा भयंकर था। वह क्यों आती थी और फिर कहां जाती थी यह जान नहीं पड़ता!"

रुक्मिणी ने कहाः—"तुम्हारे साथ हँसी दिल्लगी करने में प्राणनाथ को बड़ा आनन्द मिलता है। मुझे मालूम होता है कि यह सब उन्हीं की लीला है। तुम्हारा महल स्वर्ग के समान है। वहां आकर इस प्रकार से छल छिद्र करने को देवता भी समर्थ नहीं हैं। फिर उप-देवताओं की क्या कथा? जिस स्वर्गधाम में प्रवेश करते समय पुण्यवान् लोगों का मन कंपित होता है वहां पर पापीजनों का प्रवेश कैसे हो सकता है?"

सत्यभामा ने कहाः—"यदुकुल में घर घर जो घोर अत्यचार का संचार हो रहा है क्या यह उसकी तो लीला नहीं है? उस अत्याचार की छाया अब तक तुम्हारे सरल हृदय पर नहीं पड़ी। तुम्हारा हृदय बालिका के हृदय के समान है। तुम सदैव पति के ध्यान में मग्न रहती हो! चारों ओर अत्याचार की भयंकर अग्नि प्रज्वलित हो रही है।

यादव लोग परस्पर द्वेष से जर्जर हो रहे हैं। परन्तु तुम्हें अब तक इसकी कुछ भी ख़बर नहीं! श्रीकृष्ण जी के सिवाय सब यादव—नर और नारी— सुरापान कर के नशे में अन्धे हो रहे हैं। कोई किसी की बात नहीं मानता, न कोई किसी को पहचानता है। लज्जा और भय को सबों ने परित्याग कर दिया है। पिता पुत्र, पति पत्नी इत्यादि पवित्र बंधन से मुक्त हो गए हैं। मुझे ऐसा मालूम होता है कि द्वारिका में साक्षात अशान्ति की मूर्ति आ विराजमान हुई है!"

"बहन! तुम ने यह कैसे भयंकर चित्र का वर्णन किया? मुझे प्रतीत होता है कि यह सब उन्हीं की लीला है। परन्तु तुम्हें केवल भ्रम मात्र है! जिसकी लीला से सारे भारतवर्ष में अशान्ति स्वप्न के समान हो गई, वही इस समय यादवों का स्वामी और कर्णधार है। मुझे निश्चय है कि यादव अशान्ति के समुद्र को पार कर के, सहज ही में शान्ति के किनारे पहुंच जायँगे।

बहुत देर तक सत्यभामा समुद्र की ओर देखती चुपचाप बैठी रहीं। धीरे धीरे अंधेरा होने लगा। कुछ देर पश्चात् उन्होंने कहाः—"बहन! तुम कुछ भी कहो, समुद्र के वक्षस्थल पर पड़ने वाली संध्याकाल की छाया के समान मेरे हृदय में घोरतर छाया पड़ रही है। अब यादवों के शिविर में होने वाले आनन्दोत्सव की यह ध्वनि मेरे कानों को अशान्ति के हाहाकार के समान भासित होती है। यह देखो, समुद्र का पानी कैसा स्थिर है; परन्तु थोड़ी देर में बादल आने से सारा समुद्र खलबला उठेगा। यादवों के शिविर में अब शान्ति होकर आनन्द की ध्वनि सुनाई पड़ती

है परन्तु आकाश में मेघ कब आवेंगे और पानी कब बरसने लगेगा यह कौन कह सकता है ?"

नारायण की प्रशान्त और प्रसन्न मूर्ति धीरे धीरे शिविर में आई। दोनों ने उनके चरण पर मस्तक रख कर उन्हें प्रणाम किया और उनके समीप ही पलंग पर एक किनारे बैठ गईं। और रुक्मिणी ने कहा कि:—"प्राणनाथ! सत्यभामा का भय दूर करो। अमंगल-अशान्ति के भयङ्कर मेघों से उनका हृदयाकाश आच्छादित हो रहा है। आज उत्सव के दिन भी उनका मन प्रफुल्लित नहीं है।"

कृष्ण ने हँस कर कौतुक के साथ उत्तर दिया:—"इसमें विशेषता क्या है? तुम्हारी सत्यभामा को सदैव ऐसाही मालूम होता है। यह संसार मंगलमय, शान्तिपूर्ण, शोभामय, सुखमय और पुण्यमय है। यह उत्सव और आनन्द का घर ही है परन्तु सत्यभामा को कहीं भी कल्याण, सुख अथवा शान्ति मिली है? उलूक की दृष्टि में प्रकाश कभी नहीं पड़ता। इस त्रिभुवन में अकल्याण अथवा अशान्ति कहाँ है यह उन्हें बताना चाहिए। जो जिसको चाहिये वही उसे मिलता है। चन्द्रमा में कलंक, फूल में कांटा, अथवा चांदनी में मेघ की छाया कहांहै यह उन्हे दिखाई पड़ जाता है। इस संसार में निर्दोष कुछ भी नही है। पूर्ण निर्विकार एक ही वस्तु, एक सत्यभामा मात्र है!"

रुक्मिणी ने कहा;—"प्राणनाथ! यह हँसी दिल्लगी करने का समय नहीं है। उनको और अधिक दुःख मत पहुंचाओ। आज सदैव के समान सत्यभामा नहीं है। यादवों पर आए हुए संकट के कारण उनका हृदय व्याकुल हो रहा है।

आप यादवों के स्वामी हैं। इस कारण यादवों का अकल्याण आपका भी अकल्याण है।"

कृष्ण ने मुँह घुमा कर सत्यभामा की ओर देखा। वे चुप चाप संध्या समय की शोभा समुद्र की ओर मुँह किये बैठी देख रही थीं। चिन्तावान होने के कारण, कृष्ण का किया हुआ विनोद उन्होंने नहीं सुना। उनको दुःखी देख कर कृष्ण का मुख गम्भीर हो गया। कुछ देर तक वे चुप चाप यों ही घूमते रहे; पश्चात कहने लगे;—"शान्ति अथवा अकल्याण यह सब कुछ मनुष्य के कर्म का फल हैं। इस कर्म-फल की रेखा किसी के टाले नहीं टलती। रुक्मिणी, तुम आँखें खोल कर राजसूययज्ञ की ओर देखो। उस समय मैंने बड़े उद्योग से भारत की अशान्ति को निवारण किया। अशान्ति के साक्षात् अवतार दो। जनों की बलि देकर, मैंने शान्ति का साम्राज्य स्थापित किया। परन्तु उससे क्या लाभ हुआ? पुनः कुरुक्षेत्र मे भयंकर अग्नि प्रज्वलित होउठी। भारतीय युद्धनिवारणार्थ मैंने कितना प्रयत्न किया परन्तु सब निष्फल! जिस अधर्म के प्रचार से कुरुक्षेत्र में इतना अनर्थ हुआ वह अधर्म यादवों के हाड़मांस में व्याप्त हो रहा है। इस अधर्म का फल अशान्ति और अकल्याण है। इसका निवा-रण मैं कैसे करूं? यादवों का ही नहीं, मैं सारे मनुष्य जाति का स्वामी हूं। सभी के कल्याण से मेरा कल्याण है और सबों के सुखी रहने से मैं सुखी रह सकता हूं।"

आठवाँ अध्याय

अभिशाप

एक पहर रात बीत गई थी। रैवतक पर्वत के शिखर पर दुर्वासा ऋषि चिन्ताकुल बैठे हुए थे। पास ही कितने ही और भी ऋषि मुनि सचिन्त बैठे थे। एक दिया धीमे धीमे वहां पर जल रहा था। मन्द मन्द हवा चल रही थी जिसके कारण चिराग़ की ज्योति हलती थी; जिस से ऋषियों की परछाया इधर उधर नाचती हुई कुछ दूरी पर दिखाई पड़ती थी। उस समय वहां का दृश्य, भूत प्रेतों का स्मरण दिलाता था। देखने वालों को वहां पर भय मालूम पड़ता था। दुर्वासा ऋषि के बहुत से शिष्य देश देशान्तरों में से घूम घाम कर आए थे और अपना अपना हाल अपने गुरु दुर्वासा से वर्णन कर रहे थे। दुर्वासा ने सबों का हाल सुना और पश्चात् यों कहने लगे;— 'तुम जिस देश में गए, वहां क्या क्या देखा और सुना; वह सब विस्तारपूर्वक कहो"।

गुरु की आज्ञा पाकर उसमें से एक ने कहाः—"योगीन्द्र ! हमने जो कुछ कानों से सुना और आँखों से देखा है वह सब आप से निवेदन करते नहीं बनता। भारतीय युद्ध के पहले, प्रलयकाल के मेघ के समान, जो अशान्ति भारतवर्ष में व्याप्त

हो रही थी वह अशान्ति अब जाती रही है। हर एक राज्य में, नगर में, घर में, और मनुष्य में जो द्वेष व्याप्त हो रहा था; हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक, साधुओं की हाहाकार और दुष्टों का घोर अत्याचार सुनाई पड़ता था और अधर्म का भीषण नृत्य दिखाई पड़ता था; उन में से अब कुछ भी दिखाई अथवा सुनाई नहीं पड़ता। प्रातःकाल होते ही-सूर्य की किरणें निकलते ही—जिस प्रकार तिमिर का नाश हो जाता है उस प्रकार अब उस अशान्ति का भी नाश हो गया। भयंकर बादल शान्त हो जाने के पश्चात् जिस प्रकार सृष्टि मधुर और शान्तिमय हास्ययुक्त दिखाई पड़ती है उसी प्रकार आज भारतजननी सुशोभित है। धर्म राज्य की स्थापना हो कर सारा भारतवर्ष आज एक राज्य-छत्र के नीचे विराजमान है। उसके आश्रय में छोटे छोटे राजा, महाराजा शान्तिपूर्वक आनन्द के साथ अपना अपना समय व्यतीत करते हैं। द्वेष और हिंसा का नामो-निशान बाक़ी नहीं रहा। नवीन धर्म के प्रेम में तल्लीन होकर सब लोग उन्नति कर रहे हैं। व्यापार की खूब ही तरक़्क़ी हो रही है जिससे पृथ्वी धन धान्य से समृद्धिशालिनी होती जाती है। इतने दिनों तक बंधे हुए ज्ञान के सागर का प्रवाह फिर बहने लगा है। तत्वरत्न से सरस्वती का पात्र भर कर, सिंधु के गर्भ में प्रवेश करने का उद्योग कर रहा है। लक्ष्मी और सरस्वती का वैर भाव मिटसा गया है। वे दोनों नवीन प्रेम धर्म से मंडित होकर, एक दूसरे के गले में हाथ डाले हुए, आनन्दपूर्वक एक स्वर्ण-जटित सिंहासन पर विराजमान हैं। सारा संसार अपना अपना कर्तव्य कर्म करता हुआ नारायण के नाम का जप कर रहा है"।

दुर्वासा यह बातें अपने शिष्य से सुन कर बड़े ज़ोर के

साथ खिलखिला कर हँस पड़े और कहने लगे कि:—" लोग कैसे मूर्ख हैं! कुरुक्षेत्र के महायुद्ध का कारण दुर्वासा। यह सब दुर्वासा की की हुई लीला है। परन्तु यह बात किसीने नहीं समझी। यह इतना बड़ा नरमेध यज्ञ कृष्ण द्वारा—एक गोप-द्वारा क्या हो सकता है? पाँडवों के दूत बनकर उन्होंने मेल मिलाप करा देने का कितना उद्योग किया! केवल पांच गाँव पाँडवों को दिए जाँय, यहां तक उन्होंने भिक्षा माँगी और आपस की कलह और तकरार मिटाने का उद्योग किया परन्तु दुर्योधन ने कहा न माना। मेरी सलाह, मेरे मंत्र पर उन्होंने अमल किया। 'सुई के नोक के बराबर भी भूमि न दूँगा' वह इस बात पर दृढ़ बना रहा। ब्राह्मणों से द्वेष रखने वाले क्षत्रिय, उनका संहार करके ब्राह्मणों के आधिपत्य का रक्षण करने के लिए ही मैंने इस नरमेध यज्ञ को करके सर्वत्र शान्ति फैलाने का उद्योग किया। कृष्ण की क्या ताक़त थी जो वह यह सब कुछ कर सकते? परन्तु अब मेरा नाम कोई नहीं लेता; जहां देखो वहां उस गोप बालक का ही नाम लोगों के मुँह पर रहता है! इन्द्र, चन्द्र इत्यादि देवताओं को छोड़ कर, लोग गोपाल और गोवर्धन की पूजा करने लगे हैं! इन सब बातों का मैं कैसे सहन करूँ? इस पापी नाम का और इस पापी धर्म का किसने प्रचार किया?"

शिष्य ने भयभीत होकर उत्तर दिया;—"महर्षि व्यास—"

दुर्वासा ने क्रोधित होकर बड़े ज़ोर से कहा;—"महर्षि! व्यास!! महर्षि!!! मूर्खों, व्यास कौन है? उसको महर्षि किसने बनाया?"

शिष्य ने डरते डरते कांपते हुए कहा:—"पराशर का पुत्र—"

दुर्वासा ने फिर चिल्ला कर कहाः—"पराशर का पुत्र? पराशर जितेन्द्रिय, क्या वह उस का पुत्र हो सकता है? पराशर सरीखे महान् ऋषि को इस प्रकार कलंकित हुआ मैं देखता हूं? मूर्ख! तूने मेरे पास रहकर क्या यही सीखा?"

शिष्य ने डरते डरते उत्तर दियाः— 'द्वैपायन—'

दुर्वासा ने कहाः—"मैं अब समझा, तुम्हारा महर्षि कौन है, धीमरी के पेट से द्वीप में जो बालक जन्मा वह तुम्हारा महर्षि! वह व्यास! वह पराशरपुत्र! वाह वाह, कैसा अच्छा नवीन धर्म! महर्षि कौन, धीमर का पुत्र; नारायण कौन, गोप का बालक, और ओंकार क्या, गोप का नाम। इस धर्म के लिए वेद अथवा अन्य किसी धर्म ग्रंथ का प्रमाण है."

शिष्य ने उत्तर दियाः—"हां, भगवद्गीता, यह उनका शास्त्र है। द्वैपायन ने उपनिषदों का मथन करके जो उस से ज्ञानामृत ढूँढ निकाला है वह सारा उस ग्रंथ में वर्णित किया गया है। स्वयं सुभद्रा योगिनी का रूप धारण करके अनेक तीर्थों में घूम घूम कर उस धर्म का उपदेश करती फिरती हैं। इस धर्मामृत का पान करके और कृष्ण नाम का जाप करके नर नारी तन्मय हो जाते हैं। उन की आंखों से प्रेमाश्रु की धारा बहने लगती है और उनका हृदय आनन्द के कारण गद्गद हो जाता है।

दुर्वासा ने कहाः—मेरे उस महाग्रंथ, मेरी उस वेद की व्याख्या का तुम क्यों प्रचार नहीं करते? इतने दिनों तक तुम क्या सोते रहे?"

"उस महा—ग्रंथ का नाम सुन कर लोग हँसने लगते हैं। वे जो कुछ उसकी बाबत कहते हैं वह आपके सामने कहते नहीं बनता!"

"अरे मूर्खों! तुम यह नहीं समझते कि वर्तमान थोड़ा है और भविष्यत् अनन्त है! मेरे यश का गान अभी लोग करें यह मेरी इच्छा नहीं है। भविष्यत् काल मेरी महाकीर्ति का गायन करेगी। जुगनू की चमक रात्रि को उज्वजल दिखाई पड़ती है परन्तु सूर्योदय होने पर उसका तेज-प्रकाश किस तरह रह सकता है? धीमरी के बालक ने कितने ही छोटे बड़े ग्रंथ रचे हैं परन्तु मेरे ग्रंथ असंख्य हैं। वे काल के समुद्र में बहुत बड़े जहाज़ के समान अचल बने रहेंगे और धीमरी की छोटी छोटी नाव के समान इधर उधर बह जायँगे। मेरे ग्रंथ अनन्त काल तक अनन्त जीवों का उद्धार करेंगे।"

एक शिष्य ने मन ही मन में कहाः—"अनन्त जीवों का? हां, टीक है। इस ग्रंथ का ढेर अनन्त कीड़ों का उद्धार करेंगे। परन्तु व्यास का एक ही ग्रंथ पढ़ कर मेरे मन को बड़ा आनन्द मिला। मुझे उससे बहुत कुछ समाधान हुआ।" कुछ देर तक चुप रह कर फिर दुर्वासा ने कहाः—"यादवों के बालकों ने तुम्हारा अपमान किया, वह बात फिर मुझसे साफ़ साफ़ कहो।"

"गुरू जी की आज्ञा पाकर हम लोग द्वारिका को गए। नगर के बाहर कुछ बालक खेल कूद रहे थे। उन्होंने एक बालक को स्त्री के वस्त्राभूषण पहना कर और उसके पेट में कढ़ाई बांध कर गर्भिणी स्त्री का रूप बनाकर उसे मेरे पास लाए और मुझ से पूछा कि, 'मुनिवर, इसके पेट से पुत्र होगा अथवा कन्या'? यह कह कर वे सब लोग एक दूसरे की ओर देख कर हँसने लगे। मैंने क्रोधित होकर उनसे कहाः—"दुष्ट बालको! इस कपट नारी के पेट से मूसल उत्पन्न होगा और उससे उन्मत्त यादव कुल का समूल नाश हो जायगा।

इस बात को आज कई वर्ष बीत गईं ! परन्तु जब कभी इस बात का स्मरण हो आता है तब हृदय को बहुत ही दुःख होता है"।

दुर्वासा ने कहा:—"यह अभिशाप अक्षरशः सत्य होगा। यादव लोगों का उसी कढ़ाः से जो बालक के पेट से बांधी गई थी, नाश होगा। अच्छा, अब चलो, अपने आश्रम में चल कर तप आरम्भ करें।

नवाँ अध्याय

महा-प्रस्थान

(प्रवास क्षेत्र में यादवों का नाश होने के पश्चात्)
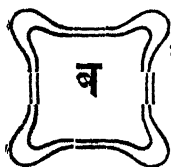
बलराम ने कहा;—"हाय हाय ! कृष्ण ! यह क्या किया ? यदुकुल का—हरिकुल का—नाश किस तरह होने दिया ?"

कृष्ण ने कहा;—"हरिकुल का नाश नहीं हुआ और न कभी होगा। हर एक युग में उस की व्यवस्था जुदी जुदी है। हर एक युग में नवीन क्षेत्र के लिए, नवीन भाव के साथ आप अवतार धारण करेंगे और मैं भी अवतार लूँगा। कुरुक्षेत्र और प्रभास की भयंकर लीला, नवीन रूप से, हर एक युग मे होगी। और इसी प्रकार पृथ्वी पर दुष्टों का नाश हुआ करेगा। नवीन यमुना के किनारे नवीन धर्म-वृक्ष की साया के नीचे, नवीन वृन्दावन में, नवीन संगीत ध्वनि सुनाई पड़ेगी, जिसके द्वारा साधुओं का उद्धार होगा।"

बलराम ने कहा;—"कृष्ण ! तुम्हारी यह लीला मेरी समझ में नहीं आती। मैं व्याकुल हो रहा हूं। पुत्र, पौत्र,

बन्धु इत्यादि के शोक से मेरा हृदय विदीर्ण हुआ जाता है। मुझे मालूम होता है कि सारे यदुकुल का नाश हो गया। दिन भर प्रभास तीर्थ में किस प्रकार आनन्दपूर्वक, उत्साह के साथ उत्सव होता रहा, परन्तु रात को न जाने किस तरह यह अनर्थ आ उपस्थित हुआ। परस्पर द्वेष उत्पन्न होकर कुल का क्षय हो गया! सुख के स्थान पर शोक, मंगल के स्थान पर अमंगल और अमृत के स्थान पर हलाहल को स्थान मिला। बड़े बड़े विशाल राजभवन—रंगमहल-श्मशान हो गए, और कुंजवन में बड़वानल ने प्रवेश किया! बालक गए, नाते रिश्ते के लोग गए, भाई बन्द सब गए! हाय हाय कृष्ण! तुम्हारी यह कैसी अपरम्पार लीला है! फूलों का नाश हुआ, फलों का सत्यानाश हुआ, यहां तक कि पत्ते वग़ैरह तक समूल नष्ट हो गए! मैं यदुकुल में ठूँठ के समान बाक़ी रह गया। अब मैं अकेला क्या कर सकता हूं?"

कृष्ण ने कहा;—"तुम्हारी लीला अब भी बाक़ी रही है। भारतवर्ष में उसका अंकुर मात्र ऊपर आया है। वृन्दावन में, मथुरा में, कुरुक्षेत्र में और द्वारिका में तुम्हारे वैराग्य का, सामर्थ्य का, सरलता का और प्रेम का अब आरम्भ हुआ है। आपकी महा क्रीड़ा-लीला नवीन क्षेत्र में होने वाली है। यह भारतवर्ष ही सारा संसार नहीं है और न यह समुद्र ही जगत् की अन्तिम सीमा है। इस समुद्र के पार बड़े बड़े विशाल देश और अनेक राज्य हैं। और वहां नाना वर्ण के, नाना प्रकार के, भेष धारण करने वाले लोग रहते हैं। भारतवर्ष केवल पृथ्वी का एक छोटा सा भाग अथवा टुकड़ा है। उन देशों के निवासी अब तक जंगली हालत में

हैं। उन तक ज्ञान का प्रकाश अभी नहीं पहुंचा। कला कौशल का उन्हें अब तक ज्ञान नहीं हुआ। व्यापार व्यवसाय से होने वाले सुख का उन्हें अब तक ज्ञान नहीं है। धर्म का उनपर अब तक प्रभुत्व नहीं है। पृथ्वी की देह अरण्यवत् है। मनुष्य का शरीर जड़ है। अहिल्या पत्थर हो गई, यह कवि की कल्पना मात्र नहीं है। भारतवर्ष पृथ्वी पर स्वर्ग, पृथ्वी का हृदय, मानव जाति का शिर, और ज्ञान का भंडार है। इस हृदय में जो शक्ति, इस शिर में जो धर्म स्थापित हुआ है; उस शक्ति को लेकर, उस धर्म की सहायता से देश देशान्तरों में जाओ। सौराष्ट्र के किनारे पर जहाज़ तय्यार है। यदुकुल का सात्विक पुरुष प्रवास के लिए तैयार आप की राह देखता है। पृथ्वी का उद्धार करने के लिए इस महा-यात्रा को आप पूरी करें। भारतवर्ष में अब मेरी लीला समाप्त हो गई; सात दिन के अन्दर द्वारिका समुद्र में डूब जायगी। तुम्हारे पाद-स्पर्श से, अहिल्या के समान, पृथ्वी और मनुष्य मात्र का उद्धार होगा। अरण्य राष्ट्र बन जाँयगे। पशु के समान जंगली आदमियों की दशा सुधर जायगी; वे देवता के समान योग्य बन जाँयगे। जगत् के इतिहास में हरिकुल और हरिकुलेश की पूजा होगी। समुद्र के हृदय पर नृत्य करने वाले जहाज़ अपना झंडा हिला कर मानों आप को बुला रहे हैं। आपके द्वारा लोगों का उद्धार हो, इस कारण महा-सागर आपका आह्वान कर रहा है।"

वासुकी की खोज में नाग की सेना घूम रही थी। नारायण ने उसको रोक कर कहा;—

"वासुक का कार्य समाप्त हुआ। तुम्हारा नवीन

कार्यस्थल, अब* समुद्र के उस पार के किनारे पर है। यह श्वेत

* प्रभास काव्य के बारहवें सर्ग में काव्य के प्रकाशक ने दो टिप्पणियां दी हैं; उनका सारांश हम नीचे देते हैं। महाभारत के अन्त में दो कथाओं का उल्लेख किया गया है:—

१—"बलराम की आत्मा सर्प रूप धारण करके प्रभास समुद्र की ओर गई। मधुसूदन निजन बन में गये और उन्होंने देखा कि, बलदेव योगासन पर विराजमान हैं। और उनके मुख-मंडल से एक बहुत बड़ा श्वेत सर्प निकल रहा है। मुँह से बाहर आकर वह सर्प बड़े ज़ोर से समुद्र की ओर गया; तब सागर, नदी, जलपति वरुण, और इसी प्रकार कर्कोटक, वासुकी इत्यादि नाग उसके पास गये और उसकी पूजा की।"(महाभारत मौसलपर्व-अध्याय ४०) यह एक रूपक है। बलराम ने नाग राजा की सेना साथ लेकर समुद्र यात्रा की। यह इस का मतलब है।

२—पांडव एक कुत्ते के सहित असंख्य देश, नदी और समुद्र नाँघते हुए पीत समुद्र के किनारे पर और लवण समुद्र के उत्तर के किनारे पर आये। इसके बाद पांडव धीरे धीरे असंख्य देश, नदी और समुद्र को पार करते हुए पीत समुद्र के किनारे पर पहुंचे।............बाद को दक्षिण की ओर चल कर लवण समुद्र के उत्तर किनारे पर से दक्षिण की ओर गये।

(महाप्रास्थानिकपर्व, अध्याय १)

ग्रीक इतिहास से यह पता चलता है कि जल-मार्ग द्वारा पूर्व की ओर से हेरेक्लापडी और हरक्युलस ग्रीस देशों में

वर्ण महा बलवान् नवीन नागराजा है। आर्य और अनार्य के

आये। श्रीकृष्ण के वंशजों का नाम हरिवंश और उनके कुल का नाम हरिकुल। उसका अधिपति बलराम, वेही हरिकुलेश (ग्रीक हर्क्युलीस)

"Arrian notices the similarity of the Theban and the Hindu Hercules, and cites as authority the ambassador of Seleucus, Magasthenese, who says "He uses the same habit with the Theban; and is particularly worshipped by the Sarasconi, who have two great cities belonging to them, *Viz.* Methoras (Mathura) and Clisoboras."

"Diodorus has the same legend with some variety. He says, Harcules was born among of Indians.*** (Hari cul-es) = lord of race (cula) of hari, of which the Greeks might have made the compound Here-cules. Might not a colony after the great war have migrated westward? The period of the return of the Heracules, the descendants of Atreas (Atri is progenitor of Hari-cula), would answer : it was about half century after the great war."

Tod's *Rajasthan*, ct 2, footnote.

यहूदी लोगों के इतिहास से पाया जाता है कि पूर्व की ओर से कितने ही ईश्वर अनुग्रहीत लोग ईश्वर की आज्ञा से उनके देश की तलाश में फिरते थे।

"Now the Lord had said unto Abram, Get Thee out of Thy Country, and from Thy Kindred,

सम्मेलन का गीत गाते हुए तुम उसके पीछे पीछे जाओ।"

and from Thy father's house, unto a land that I will shew thee.

2. And I will make of thee a great nation, and I will bless thee, and make thy name great and thou shalt be a blessing

3. So Abram departed * * * * and Abram was seventy and five years old when he departed out of Haron."

Genesis, Chapt. XII.

पीत सागर के पूर्वी किनारे पर मुसलमानों का धर्मस्थान अरब और लवण अथवा भूमध्य समुद्र के पूर्वी किनारे पर ईसाइयों की लीलाभूमि जूडिया और उत्तर किनारे पर ग्रीस देश। यदु यानी यहूदी और इसी प्रकार कृष्ण और क्राइस्ट; इन दोनों शब्दों में बहुत कुछ सादृश्य है । (बँगला में कृष्ण शब्द का उच्चारण कृष्टो और क्राइस्ट का ख्रिस्टो करते हैं) भारत में एक अघोरी फ़क़ीर ने भविष्य कहा था कि ख्रिस्ट पैदा होगा। उसी प्रकार ग्रीस देश में भी अथवा यहूदी लोगों में भी मूर्तिपूजा भारत के समान ही थी। इस पर से विद्वान् लोग बहुत कुछ विचार कर सकते हैं अथवा अनुमान किया जा सकता है।

卐
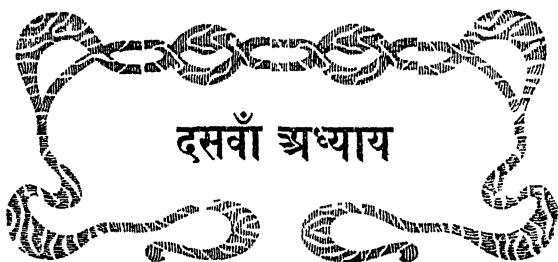
दसवाँ अध्याय

प्रायश्चित्त

रा त्रि का समय है। चारों ओर खूब अँधेरी फैली हुई है। अँधेरे में हाथ को हाथ नहीं सुझाई पड़ता। ऐसे विकट समय में दो घोड़े दौड़ते हुए द्वारिका की ओर जा रहे थे। थोड़ी दूर चल कर घोड़े पर से अर्जुन ने कहा;—"सुभद्रा! सुनो, यह हाहाकार का शब्द कहां से सुनाई पड़ रहा है? देखो, मुझे कौन पुकार रहा है? यह तो कृष्ण की आवाज़ मालूम पड़ती है?"

सुभद्रा अपने घोड़े पर चुपचाप बैठी थी। वन चारों ओर शान्त था। कहीं कहीं निद्रा भंग होजाने पर पक्षी बोलने लगते थे और फिर चारों ओर सन्नाटा ही सन्नाटा हो जाता था। कुछ देर तक तो अर्जुन इधर उधर देखते रहे, परन्तु अन्त में उन्हें ज्ञान हुआ कि हमें केवल भ्रम हुआ, अतएव उन्होंने अपना घोड़ा फिर आगे बढ़ाया। परन्तु कुछ देर बाद फिर घोड़ा खड़ा करके उन्होंने कहाः—"नहीं, नहीं, सुभद्रा! भ्रम नहीं हुआ। सत्य ही श्रीकृष्ण मुझे पुकार रहे हैं। चारों ओर कितना भयंकर अंधकार फैला हुआ है।

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि संसार पर बहुत ही बड़ा संकट आने वाला है। एक प्रकार के अनिर्वचनीय शोक के कारण मेरा हृदय व्याकुल हुआ जाता है। मुझे सारा संसार शून्य दिखाई पड़ता है। मेरे शरीर में—हृदय में, बिलकुल बल नहीं रहा। स्वप्न, साया और अंधकार के सिवाय मुझे कुछ नहीं दिखाई पड़ता।"

सुभद्रा ने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया;—"आप को इस प्रकार शोकाकुल न होना चाहिए। यादवों के अनाथ बालकों और स्त्रियों के रक्षण का भार आप के ही ऊपर है।"

अर्जुन ने कहा:—"शोक! सुभद्रा! इस जन्म में मुझे दो बार शोक का अनुभव हुआ। दो बार, दो स्थानों पर इस दुष्ट वज्रघाती शोक ने मेरा हृदय विदीर्ण किया। कुरुक्षेत्र में मेरा प्यारा पुत्र-बालवीर-अभिमन्यु जिस समय महा-शय्या पर पड़ा था उस समय, और आश्रम में जिस समय सती साध्वी उत्तरा महा शय्यागत हुई उस समय मेरे पैरों पर नवीन उत्पन्न हुए अनाथ बालक को समर्पण करके उसने रोकर जिस समय कहा;—"मेरे अश्रुजल से और इस पवित्र फूल से उत्तरा की अन्तिम पूजा स्वीकार करो। आपके अपार प्रेम का बदला चुका कर आज मैं ऋण-मुक्त हुई। विमान में बैठे हुए नाथ मुझे पुकार रहे हैं, मुझे खुशी के साथ उनके पास जाने की आज्ञा दो। जन्म जन्मान्तर में भी आप दोनों मेरे सास और ससुर हों; यह मुझे आशीर्वाद दो।" रोती रोती उसने उस बालक को तुम्हारी गोद में फेंक दिया। उस समय उसके अधरों पर कुछ कुछ हास्य के चिह्न दिखाई पड़ते थे। अनाथ होने के दिन से उसके मुख पर मैंने कभी हास्य का चित्र नहीं देखा, परन्तु उस बार यह पहला ही प्रसंग था।

इन दो शोक-कारक बातों का स्मरण मुझे सदैव बना रहा है। कृष्ण के महा वाक्य, गीता की सान्त्वना, मेरी सहिष्णुता यह सब इस शोक के कारण न मालूम कहां चली गई। परंतु सुभद्रा! आज कल की बातें निराले ही ढंग की हैं। प्रभास तीर्थ में उत्सव की बातें सुन कर हम वहां जाने के लिए तैयार हैं परन्तु वारुणी की कृपा से यादवों के नाश की भयंकर कथा सुन कर मुझे चैन नहीं पड़ता। उस समय से आँसुओं का निकलना बन्द हो गया, मेरा हृदय शुष्क हो गया, आँखें गड्ढों में बैठ गईं! सुभद्रा! यादवों का नाश हुआ, चराचर का नाश हुआ। परन्तु कृष्ण मेरे प्राण-सखा कुशल पूर्वक हैं न? उनके चरणस्पर्श से मेरा सारा शोक दूर हो जायगा!"

सुभद्रा ने कहा;—"प्राणनाथ! आपको यह नाहक़ भ्रान्ति क्यों उत्पन्न हुई? जिस से सारे जगत् को मंगल मिलता है उसका अमंगल होना क्या सम्भव है? मंगल और अमंगल, सुख और दुःख, जन्म और मरण, शोक और शान्ति यह केवल उनकी लीला है। वे स्वयं अनन्त मङ्गल-पूर्ण हैं। इस संसार में यदि अमंगल न होता तो मंगल का ज्ञान हम लोगों को कैसे प्राप्त होता! दुःख न होता तो क्या सुख का ज्ञान हमें कभी प्राप्त हो सकता था? मौत न होती तो ज़िन्दगी के सुख को कौन जानता? शोक त्याग दीजिए। अपने नीति-चक्र से विश्व का पालन करने का भार उनके ऊपर है। अपने को जो काम सपुर्द किया गया है उसको उत्तमतापूर्वक करना, बस इतना ही अपने को अधिकार है। अपने हृदय में प्रेम और भक्ति जब तक जागृत है तब तक उनके चरण कमल उसमें बास करेंगे। उनका अधिष्ठान प्रेम है। प्रेम रूप वृन्दावन ही प्रेमरूप भगवान् का निवासस्थान है।"

अर्जुन के हृदय में फिर धीरे धीरे प्रकाश पड़ने लगा। कर्तव्य का मार्ग फिर उन्हें दृग्गोचर होने लगा। उन्हों ने फिर अपने घोड़ों को दौड़ाना आरम्भ किया। जङ्गल को नाँघ कर वे प्रातःकाल होते ही प्रभासतीर्थ में पहुंच गये। इतने में इकबारगी उनके कानों में कर्कश स्वर की पैशाचिक ध्वनि सुनाई पड़ी! दोनों ने अपने घोड़े तुरन्त रोक दिए। वह शब्द जिस ओर से आया हुआ सुनाई पड़ा था अर्जुन ने उसी ओर को अपने घोड़ों की बाग मोड़ी। वहां जाकर उन्हों ने देखा कि एक ऋषि पड़े हुए हैं, और उनकी छाती पर एक बहुत बड़ी शिला रक्खी है। वे मुँह टेढ़ा किए हुए चिल्ला रहे हैं। अर्जुन और सुभद्रा दोनों, अपने अपने घोड़ों को रोक, नीचे उतर आये। अर्जुन ने ऋषि की छाती पर से शिला को दूर किया। ऋषि ने इधर उधर देखा और रोकर कहाः—'वे आये! वे आये! अब मैं कहां जाऊं? प्यास के कारण अब मैं मरा जाता हूं"!

सुभद्रा दौड़ कर एक झरने से पानी ले आई और प्यास व्याकुल ऋषि के मुँह में पानी डाला। पानी पीकर वे किंचित् सावधान हुए। परन्तु क्रोध के कारण उन्हों ने अपना मुख अधिक विकृत करके चिल्ला कर कहाः—"अरे तू कौन है? सुभद्रा और अर्जुन! दुष्टो, यहां से दूर हो! जिसके अभिशाप से कुरु-कुल और यदु-कुल का नाश हुआ, क्या तुम उस दुर्वासा को नहीं पहचानते! चल, यहां से दूर हो! प्यास से प्राण जाते हैं। हाय, पिपासा! पिपासा!!"

उनके मस्तक को अपनी गोद में रख कर सुभद्रा ने फिर उन के मुँह में पानी डाला। ऋषि ने फिर चिल्ला कर कहा;—

"पापिष्ठे! दूर हो, दूर हो, अभी शापाग्नि से तुमको भस्म कर दूंगा।"

सुभद्रा ने बड़े विनीत-भाव से कहाः—"हम को भस्म करने को यदि आप की इच्छा है तो आप कीजिए; परन्तु इस समय आप को यहां अकेला छोड़ हम कैसे जा सकते हैं? महाराज! मैं तुम्हारी सेवा करूं, इसकी आज्ञा दो और शान्त हो, स्थिर हो। कृष्ण के मधुर नाम का जप करो इस से आप को शीघ्र शान्ति प्राप्त होगी।

दुर्वासा ने क्रोधित होकर कहाः—"तू पापी की भगिनी और यह तेरा पति? तू मेरी सेवा करना चाहती है? मेरे पवित्र शरीर को स्पर्श करना चाहती है? दूर हो! यहां से अभी दूर हो! क्या महर्षि दुर्वासा उस पापी के नाम का जप करेगा? जिसने योगानल से पर्वत विदीर्ण करके उस पापी के कुल को भस्म किया, क्या उसी पापी के नाम का महर्षि दुर्वासा जाप करेगा? कभी नहीं! कभी नहीं! दुष्टो! यहां से दूर हो। योगानल से वह पापी भस्म हुआ हो अथवा अनार्य के शस्त्र से वह विद्ध हुआ हो, तो मुझ से शीघ्र कहो जिससे मेरा हृदय ठंडा और शान्त हो। मेरा अभिशाप पूरा हुआ या नहीं, यह मुझ से ठीक ठीक कहो। देव ब्राह्मणों का महाशत्रु वह पापी मर कर नरक को गया और उसका वह धर्मराज्य रसातल को गया या नहीं यह मुझ से जल्दी कहो। पतित हुए शत्रु के सर पर लात मारने का मुझे सुअवसर नहीं मिला इसका मुझे बड़ा दुःख है।"

"वे आये! वे आये!" चिल्लाकर दुर्वासा फिर यों कहने लगेः—"भयंकर ज्वालामय सुदर्शन चक्र आया! अब मैं कहां जाऊँ? वैदिक देवताओं की पूजा करने वाले हर एक राजा

के पास मैं गया परन्तु उन धर्मभ्रष्टों में से एक ने भी मुझे आश्रय नहीं दिया। उन सबों के मुँह से पापी का नाम सुनाई पड़ा। सारी पृथ्वी उस पापी के नाम से व्याप्त हो गई है। विधर्मी लोगों के पास गया उन्हों ने भी मुझे आश्रय न दिया। पृथ्वी पर चारों ओर अधर्म फैला हुआ है। मैं वैदिक देवताओं के पास जाकर सहाय चाहूंगा। मैं इस चन्द्रलोक को जाऊँगा। अरे! चन्द्रलोक कहाँ है? उस की रोहिणी कहाँ है? ज्योत्स्ना कहाँ है? मैं यह क्या देखता हूं? इस चन्द्रलोक में पृथ्वी चन्द्रमा के समान शोभायमान है। इसकी चाँदनी कितनी ठंढी है। और चन्द्रलोक तो बिलकुल रूक्ष शिलामय है। चारों ओर ज्वालामुखी पर्वतों से निकले हुए पत्थर पड़े हुए हैं। न तो वहाँ वृक्ष हैं, न पानी, न जीव सूर्य्य की प्रखर ताप से सब चीज़ें तप्त हो रही हैं। अरे! अब मैं मरा! कहाँ जाऊँ? पिपासा! पिपासा!!"

सुभद्रा ने फिर उन के मुँह में पानी डाला। अर्जुन धनुष के सहारे पास ही खड़े यह सब लीला देख रहे थे। करुणामय सुभद्रा दुर्वासा का मस्तक अपनी गोद में लिए बैठी थीं। 'वे आये! वे आए' यह कह कर दुर्वासा पागलों की तरह बातें करने लगे। "मैं सूर्य्य लोक को जाता हूं। जपाकुसुमसंकाश, ध्वान्तारि, सर्वपापघ्न आदित्य कहाँ है? उसका रथ और उसके सात घोड़े कहाँ हैं? सारथी अरुण कहाँ है? अग्नि! अग्नि! चारों ओर भयंकर अग्नि फैली हुई है। वह अनन्त अगाध अग्नि का महा सागर है! पर्वत के समान अग्नि की ऊंची ज्वालायें उठती हैं। बड़ा ही भयङ्कर घन घोर शब्द सुनाई पड़ता है! मैं इस अग्नि-मण्डल में कहां जाऊं? यह पृथ्वी तो उसके सामने

गेंद के समान है ! मेरा रक्त, मांस, मज्जा सब जला जाता है, पिपासा ! पिपासा !!"

यातना से ऋषि का शरीर अधिक विकृत हो गया । वे अधिक व्याकुल होने लगे, सुभद्रा का हृदय करुणा से विदीर्ण होने लगा । उनकी आँखों से अश्रु रूपी सन्ताप हारिणी करुणा की प्रेम-गङ्गा बहने लगी । उन्होंने कहा;—"आप कृष्ण नाम का जाप करें, आप को शान्ति प्राप्त होगी ।"

दुर्वासा ने चिल्ला कर फिर कहा;—"दूर हो ! बार बार उस पापी का नाम लेकर मेरे हृदय को तू वेदना पहुंचाती है ! पापिष्ठे ! वह व्यभिचारी, दुष्ट, हीन गोरक्षक; उसका नाम महर्षि व्यास लें ! पवित्र स्वर्ग क्या नरक का नाम लेगा ? उस विधर्मी के भयंकर चक्र ने आकर मेरे शरीर को बिलकुल चूर २ कर दिया, तथापि दुर्वासा उसका नाम कदापि न लेगा ! वह आया ! वह आया ! यह कैसा भयंकर चक्र है ? किस तरह घूमता है और किस तरह गरजता है ! मैं कहां जांऊ ? वेदों के देवता कहां हैं ? इन्द्र, रुद्र, वरुण कहां हैं ? कैसा विलक्षण चमत्कार है ! नील वर्ण आकाश में अनन्त सूर्य अग्नि के गोले घूमते फिरते हैं ! सूर्य के आस पास ग्रह घूमते हैं और ग्रहों के आस पास उपग्रह । अचिन्त्य शक्ति और कौशल्य से यह सब अन्तरिक्ष में भ्रमण कर रहे हैं ! यहां पर असंख्य जगत् हैं और चित्र विचित्र प्रकार की सृष्टि है ! भूलोक की अपेक्षा यह देव-लोक सुन्दर शोभायमान, शान्तिमय और चिदानन्दमय है ! इसी प्रकार मनुष्यों की अपेक्षा यहां के पुण्यात्मा जीव कितने शोभामय, शान्तिमय और चिदानन्दमय हैं ! वैदिक देवता कहां हैं ? मैं किसका

आश्रय लूं ? आज मुझे कौन आश्रय देगा ? 'वह आया— वह आया' !"

फिर दुर्वासा ने भयभीत होकर चिल्लाना आरम्भ किया। करुणामय सुभद्रा ने अपने दोनों हाथ ऋषि के विकृत और भयग्रस्त मुंह पर फेरे जिसके कारण ऋषि के शरीर की अवस्था बदल गई। उन्होंने कहा;—"क्या चमत्कार है! इस विराट पुरुष के नील मणिमय शरीर में द्युलोक, भूलोक और यह अनन्त आकाश व्याप्त हो रहा है। ग्रह, उपग्रह, चन्द्र, सूर्य, धूम-केतु यह सब इस विराट् शरीर में भ्रमण कर रहे हैं। और वे सब महा सागर में पानी के बुलबुलों के समान उसी के शरीर में लीन हो जाते हैं। विश्वरूप क्या यही है? जो नित्य, सत्य, अव्यय और अक्षय है; अनन्त सृष्टि का स्रष्टा, नीति का नियन्ता, एक और अद्वितीय है—क्या वह यही है? वैदिक देवता अलग अलग शक्तियों के अलग अलग नाम हैं! तो फिर नवीन धर्म सच्चा है? विश्वरूप यह सत्य है? छि! छि! दुर्वासा यह बात कभी सच मानने वाला नहीं!"

सुभद्रा ने फिर उन के मुँह पर हाथ फेरा। दुर्वासा ने ताज्जुब के साथ पूछाः—"यह क्या? क्या उस विराट पुरुष का रूपान्तर हो गया! शिर पर मुकुट धारण किये है। हाथ में शंख और चक्र! शरीर उसका नीलवर्ण है! हे महायोगीश्वर! महादेव! आप कौन हैं? दुर्वासा अपने हृदय में आप को स्थान देने वाला नहीं! अरे! आपने तो हृदय में प्रवेश कर लिया? आप कौन? कृ—ष्ण?"

सुभद्रा और अर्जुन ने उस मधुर कृष्ण नाम का गान आरम्भ किया। उस मधुर नाम का उच्चारण करके दुर्वासा का विकृत स्वरूप प्रशान्त और स्थिर हो गया ! प्रायश्चित्त पूर्ण हुआ ! पाप-मुक्त होकर ऋषि शान्ति-धाम को प्राप्त हुए !

भविष्यत्

(श्रीकृष्ण के निज धाम जाने के पश्चात्)

व्यासकी शिष्य शैलजा कहने लगीः—"नाग के सेनापति तक्षक ने यादवों की स्त्रियों को हरण किया है, यह बात मैंने सुनी है। इस घोर पाप का परिणाम क्या होगा, यह मैं नहीं कह सकती! कदाचित् आर्य और अनार्य लोगों का फिर घोर संग्राम होगा और अनार्य लोगों का पहले के समान ही नाश हो जायगा! धर्म राज्य क्या मनुष्य के रक्त से फिर दूषित होगा? यह प्रेम, यह शान्ति और इसी प्रकार आर्य और अनार्य लोगों का सम्मेलन क्या सब स्वप्नवत् हो जायगा?"

व्यास ने स्थिर नेत्र करके शैलजा की ओर देखा। शैलजा की दृष्टि भी शून्यवत् स्थिर हो गई। पत्थर की मूर्ति के समान वह योगस्थ हो गई! व्यास ने उस से कहा:—आगे क्या होगा, इस वृत्तान्त को अच्छी तरह अवलोकन करके जो तुम्हें दिखाई पड़े वह साफ़ साफ़ कहो।"

शैलजा ने कहा:—"यह दृश्य बड़ा ही भयंकर है! दारुण समराग्नि जल रही है! तक्षक ने जो पाप किया है उसके बदले यज्ञानल में पतंग के समान नाग-जाति जल रही है।

जो नाग बाक़ी बचे हैं उन्होंने जाकर आस्तिक ऋषि की शरण ली है। कृष्ण के प्रेम से आर्य और अनार्य लोगों का पुनः सम्मेलन हुआ है! कुरुक्षेत्र में जिस धर्म का शुक्ल पक्ष को आरम्भ हुआ था उस धर्म की शान्तिमय पूर्णिमा मैं देख रही हूं। कृष्ण रूपी पूर्ण चन्द्र आकाश के मध्य में विराजमान हैं। भारत-वासियों की नाड़ी से आर्य और अनार्य इनका मिश्रित रक्त बहता है। और वह पौर्णिमा की चांदनी में शान्त-हृदय से उन्नति का मार्ग आक्रमण किये है। परन्तु हाय! फिर अधर्म-रूपी मेघों ने चन्द्रमा को ग्रसित कर लिया है। लोक यज्ञादिक करने में लगे हुए हैं। धर्म्म के स्थान पर स्वार्थ ने अपना अधिकार आ जमाया है! फिर जीवों के रक्त से पृथ्वी दूषित हो गई है। स्वार्थ के कुरुक्षेत्र में विग्रहानल की ज्वाला भभक उठी है। भारत में धर्म राज्य स्वप्न के समान हो गया है। परन्तु,अहाहा! हिमालय पर्वत के समीप ही भगवान् ने राजर्षि* के रूप में धर्मोद्धार करने के लिए पुनः अवतार-धारण किया है। विग्रहानल शान्त हो गई है। यज्ञादिक बन्द हो कर जीवों के रक्त का प्रवाह करुणारस के प्रवाह में बहने लगा है। उसका प्रवाह भारत वर्ष में ही नहीं दूर दूर तक के देशों में पहुंचा है। अनेक पतित जाति और राष्ट्रों का इसके द्वारा उद्धार हो रहा है। इस प्रवाह के कारण लोगों को चिरकालिक शान्ति-सुख का लाभ हुआ है। पृथ्वी स्वर्ग के समान दिखाई पड़ती है। परन्तु कालान्तर और स्थलान्तर से इस प्रवाह का स्वरूप बहुत कुछ बदल गया। फिर दूर समुद्र के किनारे पर नवीन यदुकुल में पाश्चात्य जङ्गली लोगों का उद्धार करने के लिए शान्ति रस के सागर हरि ने अवतार‡

---

* बुद्ध ‡ क्राइस्ट